सरल राजस्व

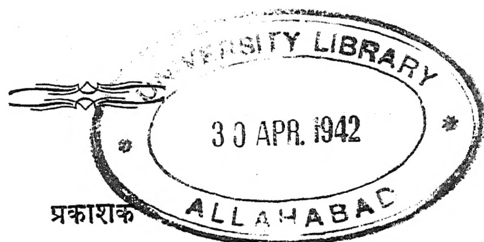
[भारतवर्षीय हिन्दी-अर्थशास्त्र-परिषद द्वारा स्वीकृत]



लेखक

पंडित दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०,

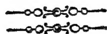
अर्थशास्त्र - अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय



प्रकाशक

व्यवस्थापक, अर्थशास्त्र ग्रन्थावली

दारागंज, प्रयाग।



प्रथम संस्करण] १९४१ [मूल्य १)

350/14

82825

मुद्रक—नारायण प्रसाद, नारायण प्रेस, नारायण बिल्डिंग्स, प्रयाग ।

भूमिका

'अर्थशास्त्र की रूप-रेखा' नामक पुस्तक मैंने गत वर्ष लिखी थी। उसमें अर्थशास्त्र के सिद्धांतों को कहानी और संवाद के रूप में देने का मैंने प्रयत्न किया था। मुझे यह सूचित करने में हर्ष होता है कि हिन्दी प्रेमी सज्जनों ने इस पुस्तक को खूब पसन्द किया। दस महीने के अन्दर ही प्रकाशक ने इस पुस्तक की इतनी अधिक प्रतियाँ बेच लीं, जितनी मुझे दो वर्ष में भी बिकने की आशा न थी। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर मैंने इस पुस्तक का दूसरा भाग लिखना आरम्भ कर दिया। जैसा कि मैं 'अर्थशास्त्र की रूप-रेखा' के अपने निवेदन में लिख चुका हूँ इस दूसरे भाग में राजस्व, रुपया-पैसा, करंसी, बैङ्क, विदेशी व्यापार और साम्यवाद पर विचार करना आवश्यक था। सबसे पहले मैंने राजस्व का खंड लिखना आरम्भ किया। जनता में अर्थशास्त्र की पुस्तकों का कम मूल्य पर खूब प्रचार करने की दृष्टि से प्रकाशक ने यह इच्छा प्रकट की कि पुस्तक का दूसरा भाग कई खंडों में निकाला जाय, प्रत्येक खण्ड में क़रीब १५० पृष्ठ हों और उसका मूल्य एक रुपया से अधिक न हो। प्रकाशक की इच्छानुसार ही अर्थशास्त्र की रूप-रेखा के दूसरे भाग का प्रथम खण्ड 'सरल राजस्व' हिन्दी प्रेमी सज्जनों को भेंट किया जाता है।

राजस्व विषय कितने महत्व का है, यह इसी बात से प्रकट है कि आज संसार के सभी देशों की उन्नति-अवनति का निर्णय उन देशों की राजस्व-व्यवस्था के आधार पर किया जाता है। यही वह धुरी है, जिस पर सम्पूर्ण देश की प्रगति निर्भर करती है। हमारे इस देश में ही प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकार लगभग दो सौ करोड़ रुपया वर्ष भर में ख़र्च करती है। विचार करने की बात है कि इतने अधिक रुपये के ख़र्चे से हमारे देश की जनता का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है! माना कि बहुत अंशों में इस ख़र्चे पर नियन्त्रण करने के अधिकार से हम वंचित हैं; पर मुख्य प्रश्न तो यह है कि क्या हमें इतना ज्ञान भी रहता है कि कहाँ, क्या, किस तरह, कितनी और किस प्रकार आय होती है, उसकी रक़में कहाँ जमा रहती है और किस तरह ख़र्च होती हैं, कहाँ रोक, कमी किंवा नियन्त्रण की आवश्यकता है और कहाँ उसके प्रकार में परिवर्तन अपेक्षित है। यह कह देना तो बड़ा सरल है कि हम कर ही क्या सकते हैं! किन्तु विचारणीय तो यह है कि हमें इस बात का पूर्ण ज्ञान भी तो होना चाहिए कि अधिकार प्राप्त होने पर हम यह करते और यह न करते, यह होने देते और इसे न होने देते। मैं तो इस विश्वास का व्यक्ति हूँ कि यदि हमारी जनता अर्थशास्त्र के ज्ञान में पूर्ण हो, तो यह असम्भव है कि अधिकार उससे दूर ही बने रहें। इस स्थल पर बहुत खेद के साथ हमें यह कहना पड़ता है कि जनता के जो प्रतिनिधि डिस्ट्रिक्ट और म्युनिसिपल बोर्डों, छोटी और बड़ी व्यवस्थापक सभाओं तथा इसी प्रकार की उत्तरदायित्व पूर्ण सभाओं में जाते हैं, उनमें से अधिकांश

प्रतिनिधि केवल इसीलिए देश, समाज और साधारण जनता की भावनाओं के अनुसार कार्य करने में असफल होते हैं कि अर्थशास्त्र और विशेष कर राजस्व विषय के ज्ञान से वे कोरे होते हैं !

लेकिन इसके लिए हम उन्हें भी दोष कैसे दे सकते हैं ! जब जनता ही इस विषय के ज्ञान से वंचित है, तब उसके प्रतिनिधि कैसे उसके पंडित हो सकते हैं । राजस्व के साथ जनता का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह तो पुस्तक को पढ़ने पर ही विदित होगा । यहाँ इतना ही लिखना यथेष्ट होगा कि जनता में जब तक इस विषय के ज्ञान का प्रसार नहीं होगा, तब तक देश का वास्तविक जागरण अधूरा ही बना रहेगा ।

इस पुस्तक के अध्यायों को कहानी या कथानक का रूप देने में मुझे हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखक पंडित भगवती प्रसाद जी वाजपेयी से बहुत सहायता मिली है । इस कृपा के लिये मैं उनका बहुत आभारी हूँ ।

दयाशंकर दुबे

विषय-सूची

सरल राजस्व

पहिला अध्याय

राजस्व क्या है ?

बड़े दिन की छुट्टियाँ आज से प्रारम्भ हो गयीं। स्कूल, कालेज और विश्व-विद्यालय लगभग डेढ़ सप्ताह के लिए बन्द हो गये। विद्यार्थी-जगत् में एक चहल-पहल आ गयी है। जो लोग दूर के निवासी हैं, वे अपने घरों को लौट रहे हैं। जिन लोगों को अपने नगर में ही पढ़ने का सुभीता है, वे लोग भी इस छुट्टी को इच्छानुसार बिताने के लिए, अपने दोस्तों के साथ, घूमने को निकल पड़े हैं।

मोहन भी अपने चाचा को लेकर अपने घर जा रहा है। उसका इरादा मंगलपुर जाने का भी है। वहाँ वह अपने मामा राजाराम से मिलने जायगा। उसके चाचा बिहारी भी उसके साथ रहेंगे।

छुट्टियाँ समाप्त होते-होते ये लोग फिर एक साथ इलाहाबाद लौट आयेंगे।

स्टेशन पर टिकटघर के पास खड़े होकर जब मोहन टिकट के दाम देने लगा, तो टिकट-बाबू ने कहा—चार आना और लगेगा।

मोहन—क्यों? क्या किराया बढ़ गया?

टिकट बाबू—नहीं, यह महायुद्ध के कारण अलग से लिया जाता है।

मोहन ने चार आने अधिक देकर टिकट ले लिया। दोनों प्लेट-फ़ार्म की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचते-पहुँते गाड़ी आ गयी और दोनों एक डब्बे में जा बैठे। कुली ने बिस्तर और सामान रख दिया। थोड़ी देर में गाड़ी चल दी।

मोहन अब दरी बिछाकर आराम के साथ बैठा हुआ था। यकायक बिहारी ने पूछ दिया—क्या सोच रहे हो मोहन?

मोहन—यही कियुद्ध चलाने के लिये यह पैसा हमसे ज़बर्दस्ती वसूल किया जाता है।

बिहारी—शायद तुम्हारे कथन का अभिप्राय यह है कि सरकार को ऐसा करने का अधिकार नहीं है।

अत्यन्त गम्भीर होकर मोहन बोल उठा—अगर मैं ऐसा सोचूँ, तो वह सर्वथा उचित है।

बिहारी—सरकार के सामने संकट है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे ऐसा करना पड़ता है।

मोहन—किन्तु जिस समय बजट पास हो रहा था, उस समय भी

क्या यह बात हमको मालूम होने का अवसर दिया गया था कि सरकार जन-साधारण से, इस तरह ज़बर्दस्ती, युद्ध के लिए टैक्स वसूल करेगी ? मान लिया कि उसका ख़र्च बढ़ गया है; किन्तु इससे क्या ! ख़र्च तो सदा आमदनी के अनुसार करना चाहिये।

बिहारी मोहन की इस बात को सुनकर मुसकराने लगा।

मोहन उसी समय बोल उठा—क्या मैं कोई भूल कर रहा हूँ चाचा ?

बिहारी—भूल ही मैं उसे कहूँगा। किन्तु यह ऐसी भूल है, जिसका दायित्व तुम्हारे ऊपर नहीं है। इस विषय का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर अभी तक तुम्हें मिला ही कहाँ है !

मोहन—मैं समझा नहीं, आप क्या बतलाना चाहते हैं। अर्थशास्त्र के मुख्य-मुख्य सिद्धान्त मैं समझ ही चुका हूँ। फिर भी इस सम्बन्ध में मुझ से कोई भूल हो रही है, यह मैं समझ नहीं पाया। ख़ैर, आप साफ़-साफ़ बतलाइये। यदि मैंने कोई ग़लती की हो, तो मैं उसे सुधार लूँ और भविष्य के लिए सावधान हो जाऊँ।

बिहारी—समाज में रहकर मनुष्य जिन ढंगों से आमदनी और ख़र्च करता है, शायद तुम जानते ही हो। किन्तु अभी तुमको यह जानने का अवसर नहीं मिल सका है कि सरकार किस प्रकार, किन सिद्धान्तों के अनुसार, आमदनी और ख़र्च करती है।

मोहन—हाँ, यह तो अभी तक.............। लेकिन क्या इसके लिए अर्थशास्त्र में कोई अलग विभाग है ?

बिहारी—क्यों नहीं ? उस विभाग का नाम है राजस्व।

मोहन चुप रह गया। बिहारी ने कहा—मनुष्य के लिए आवश्यक होता है कि वह अपना ख़र्च आमदनी के अनुसार करे; किन्तु सरकार के लिए यह सिद्धान्त न केवल अमान्य होता है, वरन् वह अनुचित भी समझा जाता है। उसके लिए तो उचित किंवा आवश्यक यही होता है कि वह ख़र्च को देखकर आमदनी करे।

मोहन—किन्तु यह तो एक विचित्र बात है। प्रजातन्त्र के इस युग में, सरकार के लिए, इस तरह की रियायत अर्थशास्त्र स्वीकार कैसे करता है?

बिहारी—बात यह है कि मनुष्य के विकास के लिए आवश्यक है कि वह ऐसे ढङ्ग से आमदनी और ख़र्च करे, जिसमें बचत (उसे) अवश्य हो। परन्तु सरकार अगर बचत करने लगे, तो उसका मतलब यह होगा कि उसने जन-साधारण की उन्नति करने में कंजूसी से काम लिया। इसीलिए सरकार के लिए बचत करना न केवल अनावश्यक, किंतु अनुचित भी समझा जाता है। कभी-कभी इस नियम का अपवाद भी होता है। जब अयाचित रूप से, अनायास, सरकार की आमदनी बढ़ जाती है, तो सरकार कुछ टैक्स माफ़ कर देती है। इसी प्रकार जब उसे बजट के बाहर ख़र्च करना पड़ता है, वह क़र्ज़ भी लेती है। क़र्ज़ लेने और उसे चुकाने के लिए कुछ सिद्धान्त होते हैं और उनका वर्णन भी राजस्व में किया जाता है।

ट्रेन चली जा रही थी। डब्बे के कुछ यात्री बिहारी के निकट बैठे हुए थे। इसी समय उनमें से एक बोल उठा—आपने जो बातें बतलाईं; यह मान लेने पर भी कि वे अपनी जगह पर ठीक हैं, मजबूर

होकर यह कहना ही पड़ता है कि जनता से लड़ाई के लिए ज़बर्दस्ती कर वसूल करना सरासर अन्याय है।

बिहारी—राजनीतिक दृष्टि से आप चाहे जो कहें, किन्तु जब आप अर्थशास्त्र की दृष्टि से इस विषय पर विचार करेंगे, तो आपको यह मानना ही पड़ेगा कि सरकारें ऐसा करती हैं, उन्हें ऐसा करना पड़ता है। सरकार पर तो देश की रक्षा का भार होता है। यदि वह ऐसा करे, विशेष रूप से संकट-काल उपस्थित हो जाने पर, तो अनुचित नहीं है। रह गयी बात यह कि जब साधारण जनता की आर्थिक दशा अत्यधिक गिरी हुई हो, तब उससे इस तरह टैक्स वसूल करना अनुचित है। किन्तु यहाँ प्रश्न जनता की आर्थिक दशा में सुधार करने का तो है नहीं। यहाँ तो प्रश्न अधिकार का है। सो, जो लोग अर्थशास्त्र के राजस्व विषय से परिचित हैं, वे इसे अवश्य ही मान्य समझेंगे। यों कहने के लिए तो मैंने ऐसे सैकड़ों ग्वाले, मछुहे, शाक-भाजी की खेती करनेवाले किसान देखे हैं, जो गंगा पार के गाँवों से अपनी-अपनी वस्तुएँ बेचने के लिए आते हैं, उन पर जो चुंगी ली जाती है, वह उन्हें बहुत अधिक खलती है। वे भी सोचते हैं कि सरकार चुंगी लेकर हम ग़रीबों का ख़ून चूसती है। चुंगी की दरों की कमी-बेशी पर विवाद हम कर सकते हैं; किन्तु यह सोच लेना कि चुंगी की मद ही अन्यायपूर्ण है, एक नादानी ही कही जायगी। यही स्थिति राजस्व की है। उसके सिद्धान्तों पर विवाद उठाया जा सकता है, किन्तु यह कहना कि कर लेना ही सरासर अन्याय है, एक तरह की मूर्खता होगी। ये चीज़ें आज की नहीं हैं, जिन मस्तिष्कों ने इनको सोचकर

निकाला है, उनकी दृष्टि में भी जनता के हित की कामना थी। सोचने को हम चाहे जो कुछ सोच लें, और कहने को चाहे जो कुछ कह डालें, किन्तु शास्त्रीय ज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि पहले उसकी छानबीन अच्छी तरह कर ली जाय, तब कोई बात उठायी जाय।

मोहन तो अब भी चुप था; क्योंकि वह राजस्व विषय पर अधिक-से-अधिक सुनने का अभिलाषी था, किन्तु वह सहयात्री चुप नहीं रह सका। बोला—अच्छा, तो अब यह बतला दीजिये कि राजस्व है क्या चीज़ और उसको जान लेना हमारे लिए आवश्यक क्यों आप समझते हैं।

बिहारी—सरकार किस प्रकार आमदनी और ख़र्च करती है, इस विषय में उसके कौन-कौन से सिद्धान्त होते हैं, अर्थशास्त्र के अन्तर्गत जिस विभाग में इसका वर्णन किया जाता है, उसे राजस्व कहते हैं। और सर्वसाधारण जनता के लिए इस विषय की जानकारी रखना इसलिए आवश्यक है कि वह जान सके कि जनता से जो द्रव्य लिया जाता है, उसका सद्व्यय होता है या नहीं।

तब आश्चर्य के साथ सहयात्री बोला—अच्छा, यह बात है! तब तो यह हमारे लिए दरअसल बहुत ज़रूरी है।

गाड़ी स्टेशन-पर-स्टेशन पार कर रही थी। अभी हाल में सिराथू स्टेशन गुज़र चुका था। रात हो गयी थी और लोग धीरे-धीरे आराम करने की स्थिति में आ रहे थे। थोड़ी देर चुप रहने के बाद मोहन ने पूछा—अच्छा चाचा, राजस्व में यह भी विचारणीय होता होगा कि सरकार अपने कर्तव्य का पालन कहाँ तक कर रही है।

बिहारी—क्यों नहीं ? जनता से कर वसूल करना, फिर उसे सद्व्यय के रूप में ऐसे अच्छे और उपयोगी परिणामों में वापस करना, जिससे जनता यह अनुभव करे कि टैक्स के रूप में जो द्रव्य उससे लिया गया है, अगर वह उसे न देकर उसकी बचत भी कर लेती, तो उससे उतना लाभ नहीं हो सकता था, जितना उसे राज्य के द्वारा ख़र्च होने से मिला है, सरकार का कर्तव्य होता है।

मोहन—जो लोग व्यवस्थापिका सभा के सदस्य होते हैं, वे इस सम्बन्ध में सरकार को सावधान करते रहते होंगे।

बिहारी—निस्सन्देह प्रजा-पक्ष के सदस्य ऐसी ही चेष्टा में निरत रहते हैं। बात यह है कि उन्हें यह ध्यान रखना पड़ता है कि सरकारी आय-का अधिकांश रुपया साधारण श्रेणी के व्यक्तियों से ही वसूल किया जाता है। अतः उसकी एक-एक पाई का व्यय उचित रूप से होना चाहिए। जो सरकारें प्रजापक्ष की होती हैं, वे स्वतः इस विषय में सतर्क रहती हैं।

मोहन—तब तो चाचाजी, सच पूछिये तो, प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह इस विषय का पूर्ण ज्ञान रक्खे कि कर क्यों लिये जाते हैं, वे किस परिमाण में किस रीति से, वसूल किये जाते हैं, उनसे प्राप्त द्रव्य किस प्रकार, किन-किन मदों में ख़र्च किया जाता है, करों के निर्धारण में जनता के प्रतिनिधियों का कहाँ तक अधिकार रहता है और उनके ख़र्च करने पर वे कहाँ तक नियन्त्रण रख सकते हैं।

बिहारी—राजस्व इन्हीं सब बातों पर प्रकाश डालता है। लेकिन

यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक हो गया है कि राजस्व के अनेक रूप होते हैं। म्युनिसिपलबोर्ड तथा डिस्ट्रिक्टबोर्ड की व्यवस्था आजकल, स्थानीय स्वराज्य के कारण, बहुत कुछ जनतन्त्रशासन की भाँति होती है। नगर के शासन की दृष्टि से म्युनिसिपलबोर्ड भी एक तरह की छोटी सरकार है। इसलिए म्युनिसिपलकर भी राजस्व के अन्तर्गत माने जाते हैं। किन्तु विस्तृत क्षेत्र में चुङ्गी, लैंडरेवन्यू तथा इनकमटैक्स ही राजस्व माना जायगा। सरकार के लिए राजस्व में बचत जहाँ आवश्यक है, वहाँ म्युनिसिपलबोर्ड जैसी संस्थाओं के लिए वह कभी आवश्यक भी हो सकता है। इसी प्रकार यदि कोई कम्पनी अधिक मुनाफ़ा उठाती है, तो सरकार सोचती है कि उस मुनाफ़े का हिस्सा देश की प्रजा को भी मिलना चाहिए। इसलिए सरकार अधिक मुनाफ़े पर भी टैक्स लगाती है।

किन्तु इससे भी आवश्यक है इस विषय में यह जान लेना कि किसी भी शासन के लिए राजस्व अनिवार्य्य है। समाज के संगठन के लिए जितनी सरकार की आवश्यकता है, उतनी ही सरकार के लिए राजस्व की। देश में शान्ति तभी रह सकती है, जब सरकार सुव्यवस्थित होती है। और सरकार की सुव्यवस्था के लिए राजस्व की आवश्यकता अनिवार्य्य है। उत्पत्ति, उपभोग, विनिमय और वितरण के कार्य तभी चल सकते हैं, जब देश में शान्ति होती है। जनता के आर्थिक अभ्युदय का राजस्व की व्यवस्था के साथ बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। राजस्व का भी देश की शान्ति के साथ बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है, क्योंकि वह जनता से वसूल किया जाता है। और

अशान्तिकाल में जब जनता से राजस्व की वसूलयाबी में अवरोध, विघ्न और कठिनाई उपस्थित हो जाती है, तो सरकार की शक्ति क्षीण होने लगती है। ऐसी स्थिति में राज्य-क्रान्ति भी हो जाती है।

फ़तेहपुर स्टेशन आ गया था। लोग पूरी-मिठाई ले-लेकर खा रहे थे। इसी समय वह व्यक्ति, जो अभी थोड़ी देर पहले इस वार्तालाप में भाग ले रहा था, मुँह बनाता हुआ बोल उठा—यहाँ का घी अच्छा नहीं है। हमारे यहाँ का डिस्ट्रिक्टबोर्ड और म्युनिसिपलबोर्ड इस विषय में बहुत अच्छा है। वहाँ आपको शुद्ध घी की ही पूरी-मिठाई सब दूकानों पर मिलेगी।

बिहारी ने इसी क्षण कह दिया—मैंने अभी थोड़ी देर पहले कहा ही था कि जनता से कर वसूल करके फिर उसे सद्व्यय अथवा ऐसे परिणामों में वापस करना सरकार का कर्तव्य होता है जिससे राजस्व-दात्री जनता यह अनुभव करे कि कर के रूप में जो द्रव्य उससे लिया गया है, अगर उसे न देकर उसकी बचत भी कर लेती, तो उससे हमारा उतना लाभ होना असंभव था, जितना उसके सरकार द्वारा ख़र्च होने से मिला है। राजस्व की उपयोगिता का यह एक प्रमुख सिद्धान्त है।



दूसरा अध्याय

सरकारी व्यय के सिद्धान्त

उन्नाव पहुँचकर मोहन को बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। महीनों बाद वह अपने घर आया था। जिस मुहल्ले में उसका घर था, उसमें, सड़क के किनारे पर ही, एक नयी कोठी बन गयी थी। जिस समय वह घर से प्रयाग गया था, उस समय वहाँ एक मकान बिल्कुल खँडहर की दशा में गिरा पड़ा हुआ था। कोठी देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसके मन में उसी समय एक विचार उत्पन्न हुआ। उसने सोचा—बड़े होने पर, जब मैं यथेष्ट रुपया पैदा कर लूँगा, तब ऐसी ही एक सुन्दर कोठी मैं भी बनवाऊँगा।

बिहारी बाबू बैठक में पलँग पर बैठे हुए पान लगा रहे थे, मोहन खड़ा-खड़ा सड़क की ओर देख रहा था। बिहारी ने पान खाते हुए लक्ष्य किया कि मोहन कुछ सोच रहा है। तब उन्होंने पूछा—मोहन, तुम क्या सोच रहे हो?

मोहन बोला—यों ही एक विचार मन में उठ रहा था। मैं सोचता था कि अगर मैं भी ख़र्च का अनुमानकर तदनुसार आमदनी करने में समर्थ होता, तो कितना अच्छा होता!

"ओह, राजस्व के सिद्धान्त ने तुमको प्रभावित किया है।" बिहारी बाबू कहने लगे—लेकिन तुमको यह भी तो सोचना चाहिए कि ख़र्च करने की आकांक्षा मनुष्य में कितनी असीम होती है। परन्तु आमदनी करने में तो मनुष्य उस असीम आकांक्षा के अनुरुप अपने को बना नहीं सकता। फिर सरकार भी जो व्यय करती है, उसके कुछ सिद्धान्त होते हैं।

मोहन—किन्तु पहले आय के सिद्धान्तों को समझ लेना हमारे लिए अधिक अच्छा होगा।

बिहारी—नहीं, राजस्व विषय के स्पष्टीकरण में हमें पहले सरकारी व्यय के सिद्धान्त पर विचार करना होगा। तुम्हें स्मरण होना चाहिए कि राजस्व में व्यय का महत्त्व अधिक माना जाता है। मनुष्य अपने जीवन-निर्वाह के लिए आमदनी देखकर ख़र्च करता है, परन्तु इसमें इसका उल्टा होता है। इस विषय पर उस दिन यथेष्ट प्रकाश डाला जा चुका है। क्या तुम्हें स्मरण नहीं है?

मोहन—हाँ, अब मुझे ख़याल आ गया। आप कहिए, आगे कहिये।

बिहारी—हाँ, तो मैं बतला यह रहा था कि सरकार के भी व्यय के कुछ सिद्धान्त होते हैं।

मोहन—लेकिन यहाँ ज़रा-सा ठहर जाइये। जब यह विचार किया जायगा कि सरकार किन-किन कार्यों पर व्यय करती है, तब प्रश्न यह

उपस्थित होगा कि यह विषय राजनीति के अन्तर्गत है, अथवा अर्थशास्त्र के ?

बिहारी—बिल्कुल ठीक। मैं अभी यह कहने ही जा रहा था कि सरकार किन-किन कार्यों पर ख़र्च करती है, यह विषय राजनीति के अन्तर्गत आता है। राजस्व में तो हम विचार केवल इस विषय पर करेंगे कि उन कार्यों पर कितना-कितना ख़र्च करना चाहिए। हाँ, तो सरकार जिन कार्यों पर ख़र्च करती है, राजनीति-शास्त्र के अनुसार वे चार भागों में विभक्त होते हैं—(१) देश की रक्षा, (२) शान्ति और व्यवस्था, (३) जन-हितैषी कार्य, और (४) व्यावसायिक कार्य। अब इन विभागों को अच्छी तरह समझ लेने की आवश्यकता है। अच्छा बोलो, देश की रक्षा सम्बन्धी ख़र्च से क्या अभिप्राय है ?

मोहन ने कुछ सोचते हुए कहा—सेना-सम्बन्धी ख़र्च ही मेरी समझ में देश का रक्षा-सम्बन्धी ख़र्च कहलायेगा।

बिहारी—ठीक है। किन्तु सेना के अतिरिक्त जहाज़ और हवाई जहाज़ भी इसी के अन्तर्गत माने जायँगे। अच्छा, अब बतलाओ, शान्ति और व्यवस्था सम्बन्धी ख़र्च से तुम क्या समझे ?

मोहन—पुलिस, न्याय-विभाग इत्यादि।

बिहारी—और जेल तथा शासन-सम्बन्धी ख़र्च क्यों छोड़ गये ? यह भी तो शान्ति और व्यवस्था के अन्तर्गत आते हैं। इसी प्रकार जनता-हितैषी कार्यों के अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा तथा उद्योग-धन्धों की वृद्धि सम्बन्धी कार्य हैं और व्यावसायिक ख़र्चें में रेल, डाक, नहर तथा तार-सम्बन्धी ख़र्च आते हैं। अब यहाँ प्रश्न यह उपस्थित

होता है कि प्रत्येक पर ख़र्च कितना करना चाहिये।

मोहन—किन्तु यह भी तो बतलाइये कि किन सिद्धान्तों के अनुसार ख़र्च का निश्चय किया जाता है।

बिहारी—वही तो मैं कहने जा रहा हूँ। सबसे पहले समता का सिद्धान्त सामने आता है। अर्थात् सभी विभागों पर बराबर-बराबर ख़र्च किया जाय।

मोहन—यही मैं भी सोच रहा था।

बिहारी—लेकिन समता का यह अर्थ नहीं है कि सभी मदों में बराबर-बराबर ख़र्च किया जाय। मनुष्य-जब महीने-दो-महीने के निर्वाह-भर के लिए बाज़ार में सौदा ख़रीदता है, तब वह प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता का अन्तिम महत्व आंकता है। वह सदा इस बात की चेष्टा करता है कि जो कुछ भी द्रव्य वह ख़र्च करे, उससे उसको अधिक-से-अधिक उपयोगिता प्राप्त हो।

मोहन—अच्छा तो आप शायद अर्थशास्त्र के उपभोग-विभाग के अन्तर्गत 'सम-सीमान्त-उपयोगिता-नियम' की बात कह रहे हैं।

बिहारी—हाँ, तुम ठीक तरह से समझ रहे हो। वही नियम यहाँ भी लागू होता है। अच्छा, अब हम यह जानना चाहते हैं कि सरकार का व्यय के सम्बन्ध में क्या सिद्धान्त रहता है?

मोहन—यही कि अन्तिम रुपये का लाभ दूसरी मद के अन्तिम रुपये के लाभ के बराबर होना चाहिये। चाहे उन मदों में ख़र्च होने वाले रुपयों की संख्या में अत्यधिक अन्तर क्यों न हो।

बिहारी—किन्तु अन्तिम रुपये के ख़र्च की बात किसी एक व्यक्ति

के लिए ठीक हो सकती है। शासन-प्रबन्ध में तो लाखों रुपये ख़र्च होते हैं। अतएव कहना यह चाहिये कि अन्तिम लक्ष रुपया, जो किसी एक मद में ख़र्च हो, उसका लाभ दूसरी मद में ख़र्च होनेवाले अन्तिम लक्ष रुपये के लाभ के बराबर होना चाहिये।

मोहन—किन्तु चाचा, यह निर्णय करना तो बहुत कठिन है कि किस मद में कैसा लाभ हुआ। सच पूछिये तो यह एक क्लिष्ट कल्पना है। सेना का लाभ तो प्रत्यक्ष जान पड़ता है। संकट-काल में वह हमारी रक्षा करती है। किन्तु शिक्षा का लाभ तो दस-पंद्रह वर्षों में जान पड़ेगा।

बिहारी—परन्तु इसके लिए राजनीति-शास्त्र का एक समाधान है। और वह यह कि प्रजा के प्रतिनिधि जैसा ठीक समझते हैं, वैसा ही सही माना जाता है।

मोहन—किन्तु इसमें भी तो सदा मतभेद रहता है। प्रायः समाचारपत्रों में पढ़ने में आता है कि सरकारी प्रतिनिधि कहते हैं कि व्यय हम समता के सिद्धान्त के आधार पर ही करते हैं, किन्तु प्रजा के प्रतिनिधि कहते हैं—सेना पर ही अधिक व्यय होता है, शिक्षा तथा जनहितकारी कामों में कम।

बिहारी—परन्तु प्रजा-पक्ष के प्रतिनिधियों का मत अधिक प्रबल होने पर विजय अन्त में उसी की होती है। सरकार के प्रतिनिधियों का मत-विरोध भले ही बना रहे, उससे होता क्या है?

मोहन—नहीं चाचा, अक्सर मैं तो पढ़ता हूँ कि व्यवस्थापिका सभाओं में प्रजा-पक्ष के आधिक्य से जो प्रस्ताव स्वीकृत भी हो जाते हैं,

वायसराय के विशेषाधिकार से वे रद्द कर दिये जाते हैं।

बिहारी—बात यह है कि अपने देश में अभी पूर्णरूप से उत्तरदायी सरकार स्थापित हो नहीं पायी है। जहाँ-जहाँ भी उत्तरदायी सरकारें होती हैं, वहाँ-वहाँ जनता के प्रतिनिधियों के मताधिक्य को ही महत्व दिया जाता है।

मोहन—अच्छा, हाँ, अब आगे बढ़िये।

बिहारी—दूसरा सिद्धान्त है मितव्ययिता का। अर्थात् सरकार किफ़ायतशारी से काम ले। यानी अधिक-से-अधिक कार्य के लिए उसे कम-से-कम ख़र्च करना पड़े।

मोहन—किन्तु हमारे देश में सरकार इस सिद्धान्त की भी अवहेलना करती है। कोई भी भारतवासी उससे कहीं कम वेतन पर काम करने को तैयार हो जायगा, जो सरकार उस व्यक्ति को देती है, जो गोरी जाति का होता है। परन्तु इस प्रत्यक्ष सत्य पर धूल डाली जाती है। प्रायः देखा जाता है कि ऐसे अवसर जब कभी आते हैं, तब उत्तरदायी पदों पर भारतीय व्यक्ति रखने की अपेक्षा सरकार किसी गोरे को ही नियुक्त करती है।

बिहारी—यह भी उत्तरदायी शासन न होने के कारण होता है। ख़ैर, तीसरा सिद्धान्त है, सार्वजनिकहित को ध्यान में रखकर ख़र्च करना। चाहिए यह कि जो भी ख़र्च किया जाय, वह शोषित वर्ग के लिए हो। उस वर्ग के लिए जिसके गाढ़े परिश्रम के आधार पर समाज का उच्च वर्ग गुलछर्रें उड़ाता है। देश की अधिकांश जनता ग़रीब है। अतएव सार्वजनिकहित की रक्षा का अर्थ है ग़रीब जनता

के रहन-सहन का दरजा उन्नत करना। उदाहरणवत् अछूतों, मज़दूरों तथा किसानों के भोजन-वस्त्र, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि का अच्छा-से-अच्छा प्रबन्ध करना। इसके विपरीत अगर किसी विशेष दल, जाति या सम्प्रदाय का पक्षपात किया जाय, तो यह एक अन्याय ही होगा।

मोहन—किन्तु हमारे देश में तो इस तरह का अन्याय सरकार दिन-दहाड़े करती है। अमीरों, ताल्लुक़दारों और राजाओं के व्यक्तिगत आराम और अमन-चैन की चिन्ता सरकार को कहीं अधिक है, अपेक्षाकृत उस वर्ग के, जो दिनरात दरिद्रता और शोषण की चक्की में पिसता रहता है। सरकार ईसाई-धर्म-प्रचार को अधिक महत्व देती है। गाँवों की अपेक्षा नगरों में ख़र्च करने की ओर भी सरकार का विशेष ध्यान रहता है। हिन्दू-मुसलिम एकता के सम्बन्ध में भी सरकार उदासीन रहती है। यहाँ तक कि सरकारी नौकरियों तक में सरकार किसी-किसी विभाग में मनमानी करती है।

बिहारी—किन्तु यह विषय अर्थशास्त्र से उतना संलग्न नहीं है, जितना राजनीति से। जो हो, सरकारी व्यय का चतुर्थ सिद्धान्त है अधिकारी व्यक्तियों के द्वारा ही ख़र्च किया जाना। अर्थात् बिना ऐसे अधिकारी व्यक्ति की स्वीकृति के, वास्तव में जिसको स्वीकृत करने का अधिकार है, खर्च नहीं होना चाहिए। इस विषय में सब से अधिक आवश्यक है जनता के प्रतिनिधियों की स्वीकृति, तदनन्तर विभागीय अधिकारी व्यक्ति की स्वीकृति। विधिवत् बजट बनना और अधिकारी व्यक्तियों के द्वारा ख़र्च करना इसके लिए आवश्यक माना जाता है।

मोहन—किन्तु हमारे देश में इस विषय में भी सरकार कम स्वेच्छाचार से काम नहीं लेती। कुछ ख़र्चे ऐसे भी होते रहते हैं, जिनका बजट में कहीं पता नहीं होता, किन्तु वे किये जाते हैं आंख मूँदकर।

बिहारी—देशी राज्यों में तो ख़र्चे के लिए अधिकारी व्यक्ति की स्वीकृति की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती।

मोहन—अच्छा चाचाजी, यह तो सब आपने बतला दिया। किन्तु अब भी एक बात रह ही गयी।

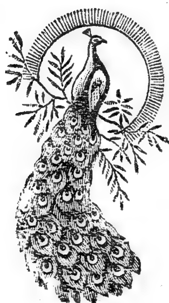
बिहारी ने मुसकुराते हुए कहा—उसे भी कह डालो।

मोहन—आम जनता को इस बात का पता भी तो चलना चाहिए कि सरकार ने इस वर्ष अमुक-अमुक मदों में इतना-इतना ख़र्च किया।

बिहारी—यह सब पाँचवें सिद्धांत के अन्तर्गत आयेगा। उसमें ख़र्च का हिसाब, उसकी जाँच, उसका प्रकाशन आवश्यकीय समझा जाता है। जब तक हिसाब सर्वसाधारण की जानकारी के लिए सुलभ नहीं बनाया जाता, तब तक वह जनता अन्धकार में ही रहती है जिससे करोड़ों का रुपया प्राप्तकर सरकार ख़र्च करती है। इस तरह से जनता को आलोचना करने का भी अवसर नहीं मिलता, जिसका उसे पूर्ण अधिकार है। किंतु ये सब बातें अन्त में उत्तरदायी शासन के द्वार पर आकर टिक जाती हैं। अर्थशास्त्र में राजस्व विषय का राजनीति के साथ अटूट सम्बन्ध है। राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिए इस विषय का सिद्धान्ततः पालन कुछ देशी राज्यों में

बहुत कम होता है, जैसा हम इस समय देख भी रहे हैं।

अन्त में मुझे कहना यही है कि जब इन पाँचों नियमों के अनुसार ख़र्च होगा तभी ख़र्च निर्दोष समझा जायगा। जब कभी इनकी अवहेलना होगी, तभी राजस्व की वसूलयाबी अस्थिर हो जायगी। और किसी भी राज्य का पतन तभी अवश्यम्भावी हो जाता है, जब राजस्व की वसूलयाबी संशय-ग्रस्त होने लगती है।



तीसरा अध्याय

देश-रक्षा-सम्बन्धी व्यय

"चाचा, ओ चाचा।" मोहन ने अपने चाचा को पुकारा।

बिहारी ने बाहर से ही उत्तर दिया—क्या है मोहन ?

मोहन—ग़ज़ब हो गया !

"क्या ? क्या ?" आश्चर्य्य के साथ बिहारी ने पूछा।

चाचा के निकट जाकर मोहन ने कहा—जो स्वेटर गतवर्ष ढाई-रुपये में मिलता था, अब उसका दाम चार रुपये तक पहुँच गया है। रमेश के पास यों तो दो ऊनी कोट हैं, परन्तु ओवरकोट उसका अब पुराना पड़ गया है। इसके सिवा वह छोटा भी होने लगा है। इस वर्ष वह एक नया ओवरकोट बनवाना चाहता था। पर अपने बाबू के साथ जो वह बाज़ार गया, तो बिना कपड़ा लिये ही लौट आया। मालूम हुआ कि इस वर्ष सारे-के-सारे मिल केवल युद्ध के लिए काम

कर रहे हैं। बाज़ार में जो भी ऊनी कपड़े का स्टाक है, सब पुराना—गतवर्ष का बचा-खुचा हुआ। दाम भी पहले से ड्योढ़े-दूने हो गये हैं। यही हाल रहा, तो एक दिन हम लोगों को इच्छानुसार खाना कपड़ा भी नहीं मिलेगा। इसी मास से लिफ़ाफ़े का दाम बजाय चार पैसे के पाँच पैसे हो गया। यात्रा के टिकटों पर केवल युद्ध के लिए 'अतिरिक्त-कर' लग ही चुका है। क्या आश्चर्य्य कि एक दिन हमारे खाद्य-पदार्थों पर भी, युद्ध के लिए, अतिरिक्त-कर लग जाय! मैं पूछता हूँ कि इस तरह ओस चाटने से कहीं प्यास बुझ सकती है!

बिहारी—युद्ध का समय एक संकटकाल माना जाता है। ऐसे समय सरकार का ख़र्च अत्यधिक बढ़ जाता है। अपने राज्य की रक्षा के लिए उसे इस तरह के साधनों का अवलम्ब लेना ही पड़ता है। इसमें आश्चर्य्य की क्या बात है? सच पूछो तो हमारे देश में अभी कुछ भी नहीं हुआ। इङ्गलैंड में तो इस समय प्रत्येक व्यक्ति के लिए दैनिक भोज्य-पदार्थों का परिमाण तक निश्चित कर दिया गया है। कोई व्यक्ति वहाँ एक निश्चित सीमा से अधिक मक्खन नहीं पा सकता।

मोहन—तो सरकार पहले से ही देश की रक्षा का प्रबन्ध ऐसा उत्तम क्यों नहीं रखती कि अशान्तिकाल में उसे साधारण जनता को इस तरह सताने की आवश्यकता ही न पड़े।

बिहारी - राजस्व के अन्तर्गत यदि तुम्हें 'देश-रक्षा-सम्बन्धी व्यय' का ज्ञान होता, तो तुमको ऐसा कहने की आवश्यकता न पड़ती।

देश की रक्षा के लिए, प्रत्येक देश की सरकार को नीचे लिखे तीन प्रकारों से प्रबन्ध करना होता है:—

स्थल-सेना ।

जल-सेना ।

हवाईजहाज़ ।

अब हमें हरएक की व्यवस्था को, अलग-अलग, ध्यान से देखना होगा। इस समय सारे संसार में सैनिक ख़र्च पहले से बहुत अधिक बढ़ गया है। हमारे यहाँ सिपाही-विद्रोह, तुम जानते ही हो, सन् १८५७ ई० में हुआ था। उससे एक वर्ष पूर्व, अर्थात् सन् १८५६ ई० में हमारे देश का सैनिकव्यय साढ़े बारह करोड़ था। किन्तु सन् १८५७ ई० में बढ़कर वह साढ़े चौदह करोड़ हो गया। फिर बराबर बढ़ता गया और सन् १८८५ में वह सत्रह करोड़ तथा सन् १९१३-१४ में—गत महायुद्ध से पहले—तीस करोड़ था। महायुद्ध में बढ़कर वह अठत्तर करोड़ तक पहुँच गया। तब किफ़ायत-कमेटी बैठाली गयी और वह अधिक घटकर भी सन् १९३४-३५ में पचास करोड़ से कम नहीं हो सका। वर्तमान महायुद्ध के कारण वह फिर बढ़ रहा है।

मोहन—सैनिक व्यय में इस तरह वृद्धि क्यों होती है चाचा ?

बिहारी—जैसे-जैसे भौतिक सभ्यता का विकास हुआ, नये-नये आविष्कार हुए, सैनिक-व्यय बराबर बढ़ता ही गया। बात यह है कि जब कोई भी एक राष्ट्र अपना सैनिक व्यय बढ़ा देता है, तो दूसरे राष्ट्रों को भी अपने बचाव के लिए ख़र्च बढ़ाना ही पड़ता है। इस प्रकार प्रतियोगिता के साथ साथ सर्वत्र सैनिकख़र्च भी बढ़ जाता

है। छोटे राष्ट्रों के लिए तो यह प्रश्न और भी कठिन हो जाता है। पिछले वर्षों में कई अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी इसलिए किये गये कि यदि पारस्परिक समझौते के द्वारा प्रत्येक राष्ट्र की सैनिक शक्ति सीमित कर दी जाय, तो उसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि सैनिक ख़र्च कम हो जायगा। परन्तु इन निशस्त्रीकरण-सम्मेलनों को वास्तव में सफलता नहीं मिली।

मोहन—तब तो ऐसा जान पड़ता है कि सैनिक-व्यय की वृद्धि रोकने का कोई उचित उपाय अभी तक अर्थशास्त्र के विद्वानों को भी, वास्तव में, मिला नहीं।

बिहारी—सैनिक-व्यय की वृद्धि रोकने के लिए अर्थशास्त्र के अन्तर्गत कोई ऐसा सिद्धान्त वास्तव में है भी नहीं। बात यह है कि यह मूलतः राजनैतिक समस्या है। अतएव इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों का यही मत है कि प्रत्येक राष्ट्र के पास इतनी काफ़ी सेना होनी चाहिए कि कोई भी दूसरा राष्ट्र उस पर क़ब्ज़ा न कर सके।

मोहन—परन्तु सेना चाहे जितनी अधिक हो, अगर वह आधुनिक वैज्ञानिक प्रणालियों के अनुसार पूर्ण रूप से दक्ष न हुई, तो कभी विजय नहीं प्राप्त कर सकती।

बिहारी—हाँ, तुम्हारा कहना ठीक है। उसे सब तरह से अपटूडेट up-to-date होना चाहिये। स्थल-सेना के अतिरिक्त जल-सेना, जहाज़ तथा हवाई जहाज़ों के लिए यह आवश्यक है वे नवाविष्कृत ढङ्ग के हों। वर्तमान युद्ध ने यह सिद्ध कर दिया है कि किसी देश में सेना चाहे बहुत अधिक बड़ी न भी हो, पर उसके पास आक्रमणकारी साधन इतने

नवीन होने चाहिए जिनकी कल्पना तक प्रतिपक्षी न कर सके। पर उन आक्रमणकारी साधनों के सम्बन्ध में इससे भी अधिक आवश्यक और ज्ञातव्य बात यह है कि वे तब तक गुप्त रक्खे जायँ, तब तक वे यथा-समय अपने आप ही शत्रु-सेना को हक्का-बक्का कर देने में समर्थ न हों और उनकी तात्कालिक बौद्धिक क्षमता को सर्वथा व्यर्थ न कर डालें। विचार करने की बात है कि वर्तमान युद्ध से पूर्व कौन कह सकता था कि हवाई जहाजों से विध्वंस-क्रिया के अतिरिक्त शत्रु-देश में सेना ले जाकर पैराशूट्स के आधार पर जहाँ चाहे उसे उतार दिया जायगा और इस प्रकार बिना किसी प्रकार की पूर्वसूचना के असमय किंवा कुसमय में वहाँ शत्रु-सेना के दल-के-दल मिलकर नगर-के-नगर विनष्टकर उनपर अधिकार स्थापित करने में समर्थ हो सकेंगे। अस्तु।

संसार में स्थल-सैनिक-व्यवस्था-शक्ति के निम्नलिखित दो रूप हैं।

१—स्थायी-सेना, जिसे अँग्रेज़ी में Standing Army कहते हैं।

२—अनिवार्य्य सैनिक शिक्षण।

भारत में स्थायी-सेना रखने की ही प्रणाली प्रचलित है। सन् १८५७ से पूर्व यहाँ पर अँगरेज़ सैनिकों की संख्या उन्तालिस हज़ार और देशी सैनिकों की दो लाख इकतीस हज़ार थी। उसके बाद सरकार ने उनमें एक और दो का अनुपात रखना निश्चित किया। अर्थात् दो सैनिक अगर देशी हों, तो एक अँगरेज़।

अनिवार्य्य सैनिक शिक्षण में सारा देश-का-देश सेना बन जाता है। उसमें अठारह वर्ष से चालिस वर्ष तक का प्रत्येक व्यक्ति सैनिक माना जाता है। प्रारम्भ में छै मास उसे ट्रेनिङ्ग दी जाती है। बाद

में प्रति वर्ष १५-२० दिन के लिए उसे कैंप में जाना होता है। इस प्रकार वह सैनिक शिक्षा में पुनः ताज़ा हो जाता है। पर वे लोग सैनिक की हैसियत रखकर भी नौकर नहीं होते। जिन दिनों कैंप में अपनी ट्रेनिंग ताज़ी करने जाते हैं, उसी समय उनको एक निश्चित पुरस्कार दिया जाता है। इसको राष्ट्र का सैनिकीकरण भी कहते हैं।

मोहन—तब तो चाचा इस तरह वास्तव में बहुत बड़ी फौज तैयार हो जाती होगी।

बिहारी – इटली तथा जर्मनी में यही प्रथा प्रचलित है।

मोहन—तब तो देश की रक्षा के लिए राष्ट्र के सैनिकीकरण की प्रणाली सर्वोत्तम है। हमारे देश में भी अगर ऐसा हो जाय, तो कितना अच्छा हो!

बिहारी—जब सरकार विदेशी होती है, तब ऐसा सम्भव नहीं हो सकता। स्थायी-सेना में जो वर्ग नियुक्त रहता है, वह प्रायः अशिक्षित अथवा अर्ध-शिक्षित होता है। विवेक-बुद्धि-हीन कहना तो एक अत्युक्ति होगी। किन्तु इतना हम कह सकते हैं कि वह स्वतः विवेक-शील कम किन्तु अपनी सरकार के प्रति आज्ञाकारी विशेष होती है। राष्ट्र के सैनिकीकरण में ऐसा सम्भव नहीं है। उसमें तो देश का शिक्षित वर्ग भी सम्मिलित रहता है। वह इतना समझदार होता है कि अपना और राष्ट्र का हित समझ सकता है। अवसर आने पर वह सरकार के साथ विद्रोह भी कर सकता है।

मोहन—किन्तु चाचा इसका एक दूसरा पहलू भी तो है। स्थायी-सेना के सिपाही तो प्रारम्भ से ही यह सोचकर भरती होते हैं कि

हमें तो एक-न-एक दिन मरना ही है। सरकार अथवा राष्ट्र के प्रति ऐसे सैनिक अंशतः उस सेना से कम उत्तरदायी हो सकते हैं, जो यह सोचकर युद्ध में आती है कि हमें मरना नहीं है, वरन् शत्रु पर विजय प्राप्त करना है। राष्ट्र के प्रति भक्ति अथवा कर्तव्य की भावना भी उनमें अधिक प्रबल होती है।

बिहारी—तुम्हारा विचार वास्तव में ठीक है। यहाँ इतना जान लेना और आवश्यक है कि राष्ट्र के सैनिकीकरण में सुरक्षित सेना कम होती है। कुछ अफ़सर नियुक्त रहते हैं, जो सैनिकों को बराबर ट्रेनिंग देते रहते हैं।

मोहन—तब तो अन्त में हमें इसी परिणाम पर पहुँचना होगा कि सैनिक ख़र्च कम नहीं किया जा सकता।

बिहारी—असल में यह एक राजनैतिक प्रश्न है। कहाँ तक व्यावहारिक है, कहा नहीं जा सकता। पर जब किसी देश की सरकार अपनी होती है, तभी तो यह सम्भव हो सकता है।

मोहन—जैसे ?

बिहारी—जैसे भारत-सरकार ही अगर चाहे तो वह सैनिक-व्यय कम कर सकती है। सेना में अफ़सर अधिकांश रूप से विदेशी रक्खे जाते हैं, जिन पर भारतीयों की अपेक्षा पाँच गुना अधिक व्यय होता है। अगर वे अफ़सर बजाय अँगरेज़ों के हिन्दुस्तानी रक्खे जायँ, तो ख़र्च अवश्य ही कम हो सकता है।

मोहन बोला—भारतीयों की अपेक्षा अँगरेज़ अफ़सरों पर पचगुना ख़र्च होता है ! तब फिर ये कौंसिलें किस मर्ज़ की दवा है ?

बिहारी—बात यह है कि सैनिकख़र्चे पर व्यवस्थापिका सभा को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। सरकार मनमानी करती है। जनता भी अशिक्षित है। वह ऐसे विषयों में सदा अन्धकार में रहती है। भारतीय सेना का प्रबन्ध इंग्लैंड के युद्ध-विभाग द्वारा होता है। सेना तथा उसके अफ़सरों का इंग्लैंड से आने-जाने और अवकाश ग्रहण करने पर पेंशन का व्यय भी भारत-सरकार को ही देना पड़ता है। अफ़सरों को वेतन तथा पेंशन के सिवा अनेक प्रकार के अलाउंस मिलते हैं। जो सिपाही अपाहिज हो जाते अथवा मर जाते हैं, उनके घरवालों को ख़ैरात के रूप में लम्बी-लम्बी रक़में दी जाती हैं। बेकारी के लिए बीमा तथा ब्याह के लिए भत्ता के रूप में भी उनकी सहायता की जाती है। कमेटियों की बैठकों तथा इंग्लैंड में अन्य खर्चे के लिए भी ब्रिटिश युद्ध-विभाग भारत-सरकार से प्रति वर्ष करोड़ों रुपये लेता है। अंगरेज़ सिपाही भारत-सरकार के ही व्यय से शिक्षा प्राप्त करते हैं। यहाँ ८–१० वर्ष रह कर जब वे इंगलैंड लौटते और वहाँ रक्षित सेना में शामिल हो जाते हैं, तब भी उनको एक निश्चित रक़म भारत सही दी जाती है। यह सेना यदि भारतवर्ष के बाहर भी लड़ती है, तो भी उसका ख़र्चा भारत सरकार ही देती है। परंतु इंग्लैंड से हम को काफ़ी सहायता भी मिलती है।

मोहन—अच्छा चाचा, क्या कभी ऐसा समय नहीं आ सकता, कि ये युद्ध बन्द हो जायँ और फल-स्वरूप सैनिक ख़र्च की यह उत्तरोत्तर वृद्धि भी आप-से-आप रुक जाय!

बिहारी—हो क्यों नहीं सकता! संसार के सारे राष्ट्र मिलकर एक

विश्व-संघ क़ायम करलें। सभी राष्ट्र अपनी आमदनी का दसवाँ भाग उस संघ को दे दें। उस सम्मिलित कोष से संघ सेना, जहाज़, हवाईजहाज़ तथा तत्सम्बन्धी नवाविष्कृत युद्ध सामग्रियाँ इकट्ठी करे। बहुत बड़ी संख्या में एक सुसज्जित सेना हर समय तैयार रहे। जब कोई राष्ट्र किसी पर आक्रमण करे, तो वही सेना उसका सामना करके संकट-ग्रस्त राष्ट्र की रक्षा करे। उस सामूहिक सेना के दसवें अंश से किसी राष्ट्र की सेना अधिक न हो।

मोहन—और पिछली लड़ाई के बाद, वह जो एक विश्व-संघ क़ायम हुआ था, इस कार्य में सफल क्यों नहीं हुआ ?

बिहारी—सबसे बड़ी कमी उसमें यह है कि उसके पास कोई सेना नहीं है। यदि किसी स्वेच्छाचारी निरंकुश राष्ट्र पर वह अनुशासन का प्रयोग करना भी चाहे, तो कृतकार्य नहीं हो सकता। दूसरे वह सारे विश्वभर का संघ है भी नहीं। अगर वह शक्तिशाली होता तो क्या इटली अबीसीनियाँ को, जर्मनी पोलैंड और ज़ेकोस्लोवाकिया को इस तरह बात-की-बात में हड़प सकता था ?

मोहन—लेकिन यह तो शान्तिकाल की बात हुई। युद्धकाल में सैनिकव्यय के विषय में क्या होना चाहिये ?

बिहारी—युद्धकाल में तो राष्ट्र की सारी शक्तियाँ केवल एक लक्ष्य पर केन्द्रित रहती है। वह यह कि ख़र्च चाहे जितना हो, किन्तु विजय अवश्य प्राप्त हो। अगर किसी राष्ट्र ने आक्रमण किया है, तो उससे अपनी रक्षा जैसे संभव हो, अवश्य की जाय। युद्धकाल में तो एक मात्र यही सिद्धान्त रहता है कि चाहे जिसमें किफ़ायत करो, चाहे जिस तरह

के कर लगाओ, युद्ध का ख़र्च दिल खोलकर करो, जिसमें संकट जल्दी-से-जल्दी टल जाय। यदि फिर भी रुपये की कमी पड़े, तो कर्ज़ लो, किन्तु अपना अभीष्ट अवश्य पूरा करो। हाँ, इसका विचार अवश्य होना चाहिये कि अकारण किसी अन्य राष्ट्र पर हमला न किया जाय, किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता का अपहरण अकारण न किया जाय। जो राष्ट्र इसका विचार नहीं करते, वे नैतिक दृष्टि से बर्बर, अन्धे और पतित ही माने जाते हैं।

मोहन—तब तो चाचा इस समय भारत-सरकार जो कुछ कर रही है, अप्रत्यक्ष रूप से आप उसका समर्थन ही कर रहे हैं।

बिहारी—बात यह है कि ब्रिटेन के स्वार्थों के साथ अगर अपने देश का कुछ भी सम्बन्ध हम स्वीकार करते हैं, तो अर्थशास्त्र और राजस्व की दृष्टि से हमें इसका समर्थन करना ही पड़ेगा। यह बात दूसरी है कि राजनैतिक दृष्टि से हम ब्रिटिश-सरकार की आधुनिक नीति से अंशतः असहमत हों।

इधर ये बातें हो रही थीं। उधर मुनियाँ रोती-रोती बिहारी के पास आ पहुँची। बिहारी ने उसे गोद में लेकर पुचकारते हुए कहा—क्यों, क्या हुआ? रोती क्यों है बेटी?

मुनियाँ बोली—ऊँ, ऊँ, मैं अपनी मूँगफली खा रही थी, बिल्लू ने झटका मारकर मेरी सारी मूँगफली फैला दी।

बिहारी ने इसी समय पुकारा—क्यों रे बिल्लू, इधर तो आ। बड़ा शैतान हो गया है तू।

मोहन ने कहा—वह तो चाची की गोद में जा छिपा है।

बिहारी ने कहा—रो मत मुनियाँ। अब के हम बिल्लू को पैसे नहीं देंगे और तुमको ज़रूर देंगे। ये देखो, तीन पैसे हैं। ले-ले।

मुनियाँ पैसे लेकर चुप हो गयी।

मोहन बोला—मैं सोचता हूँ कि विश्व-संघ के सम्बन्ध में आपने जो योजना बनायी है वह बहुत उत्तम है।

बिहारी—उत्तम तो वह अवश्य है, किन्तु उससे युद्ध बन्द हो जायँगे अथवा किसी राष्ट्र के साथ अन्याय होगा ही नहीं यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। न्याय कोई एक निश्चित स्थिति नहीं है। इसीलिए राजनैतिक समस्याओं का समाधान सदा एक ही प्रकार से होना सम्भव नहीं है। यही देख लो, मुनियाँ को हमने फुसलाकर प्रसन्न किया है। पर माता का पक्ष ग्रहण करने के कारण बिल्लू को दंड तो दिया नहीं जा सका न!

मोहन ने हँसते हुए कहा—यह उदाहरण आपने ख़ूब दिया।



चौथा अध्याय

शान्ति और व्यवस्था

सायंकाल के सात बजने का समय है। मोहन, बिल्लू, मुनियाँ तथा बिहारी अँगीठी के पास बैठकर, गरमाते हुए, खाना खा रहे हैं। मोहन की चाची भी खाना परोसने के लिए पास ही बैठी हुई है। मुनियाँ के पास जो उसका दूध-भरा कटोरा रक्खा हुआ है, अभी बिल्लू के पैर का धक्का उसमें लग गया था और दो चम्मच दूध भी उससे फैल गया था। इस कारण बिहारी ने उसे डाँट दिया। आगे के लिए उन्होंने यह विधान बना दिया कि यह दोनों भाई-बहिन एक साथ बैठकर खाना न खायँ। मोहन की चाची ने इस आदेश की घोषणा के समय ज़रा-सा जो हँस दिया, तो मोहन ने कह दिया—अच्छा चाचा, अगर इस परिवार के शासन और इसकी व्यवस्था की कोई आलोचना करे, तो उसे किस नतीजे पर पहुँचना होगा ?

बिहारी ने पूछा—और मान लो, वह व्यक्ति और कोई नहीं, तुम्हीं हो। बोलो, अब तुम्हें क्या कहना है?

मोहन—मैं तो यही कहना चाहूँगा कि आपकी व्यवस्था अवश्य संतोषजनक है, किन्तु जहाँ तक शासन का सम्बन्ध है, मुझे इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि वह अव्यावहारिक और शिथिल है।

बिहारी—इसका मतलब यह है कि तुम्हें अभी तक इस बात का ज्ञान नहीं है कि शासन और व्यवस्था के मूल में क्या विचार रहता है। शासन और व्यवस्था वही उच्चकोटि की मानी जाती है, जो एक ओर जीवन के विकास में सहायक हो, दूसरी ओर उस पर होने वाला ख़र्च आवश्यकता से अधिक बढ़ने न पाये। अभी जब मैंने आज्ञा दी कि ये दोनों भाई-बहिन एक जगह बैठकर खाना न खायें, तो इसका मतलब यह है कि पूर्व व्यवस्था में खाद्य-पदार्थों की जो बरबादी होती है, मैंने उसको रोकने के लिए एक नया क़ानून नियम दिया है। प्रत्येक राष्ट्र में शासन और व्यवस्था का कार्य्य राजस्व को सामने रखकर किया जाता है। एक विभाग उसे वसूल करता है, दूसरा उसके व्यय पर नियंत्रण रखता है। एक उन मूल प्रवृत्तियों को गतिशील रखता है, जिससे राजस्व की वसूलयाबी होती है, दूसरा उस वर्ग की व्यवस्था करता है, जिन पर राजस्व का व्यय किया जाता है। रेवन्यू वसूल करनेवाले को इसीलिए कलैक्टर कहते हैं। कलैक्टर अँगरेज़ी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है—इकट्ठा करनेवाला।

मोहन—किन्तु वह भी तो असल में गवर्नर के अधीन होता है।

बिहारी—गवर्नर शब्द का अर्थ है—प्रबन्धक, शासक, राज्याधिकारी।

मोहन—किन्तु वह कलक्टर ही डिस्ट्रिक्ट-मैजिस्ट्रेट भी तो कहलाता है।

बिहारी—बात यह है कि हमारे देश का शासन ही इस ढङ्ग का है कि जो शासक है, वही अंशतः न्यायाधीश भी होता है। जान पड़ता है कि इसके मूल में भी राजस्व को स्थायी रूप देने की प्रवृत्ति है। जो हो, शासन और व्यवस्था के लिए जिन मद्दों में ख़र्च किया जाता है, वे इस प्रकार हैं—

शासन-सम्बन्धी ख़र्च, गवर्नर, मंत्री, कलैक्टर तथा व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों का ख़र्च। न्याय-विभाग-सम्बन्धी ख़र्च—न्यायाधीश, पुलिस तथा जेल।

मोहन—किन्तु अभी आपने कहा था कि कम-से-कम ख़र्चे में अधिक-से-अधिक अच्छा शासन-प्रबन्ध होना चाहिए। परन्तु इस तरह तो ख़र्चा बहुत अधिक हो जाता है।

बिहारी—बात यह है कि अच्छा शासन तभी हो सकता है, जब देश के चुने हुए उच्च से-उच्च विचारशील व्यक्ति व्यवस्थापिका सभाओं में आ सकें, मंत्रीगण अगर इतना भी वेतन न पायें कि पद-प्रतिष्ठा के अनुकूल अपना जीवन बिता सकें, तो वे न्याय नहीं कर सकते। विवश होकर उन्हें घूस स्वीकार करनी पड़ेगी। और इस तरह शासन की जो एक नैतिक मर्यादा होती है, वह स्थिर नहीं रह सकती।

मोहन—किन्तु आपने तो एक दिन बतलाया था कि हमारे यहाँ गवर्नरों को साठ हज़ार रुपया वार्षिक से लेकर एक लाख बीस हज़ार रुपये वार्षिक तक दिये जाते हैं। अगर ये गवर्नर अँगरेज़ न होकर भारतीय हों, तो क्या इससे कम में काम नहीं चल सकता?

मोहन की चाची ने इसी समय कहा—जब इस तरह बहस छिड़ गयी है तो खाना अब भला क्या होगा !

मोहन बोला—चाची मैं तो खा चुका।

बिहारी ने भी कहा—मुझे भी अब और न चाहिये।

तुरन्त दोनों आचमन करके बैठक में आ गये।

बिहारी ने पँलग पर बैठते हुए, लिहाफ़ से अपने को अच्छी तरह ढककर, कहा—गवर्नर लोग वेतन ही इतना अधिक नहीं पाते, अलाउंस के रूप में भी उन्हें क़रीब-क़रीब इतना ही और दिया जाता है। इसके सिवा साधारण पदाधिकारियों की नियुक्ति में भी इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि अगर कुछ लोग, बारी-बारी से बराबर छुट्टी पर जाते रहें, तो भी काम में हर्ज न हो। साधारण रूप से जो काम सौ व्यक्ति कर सकते हैं, उसके लिए एक सौ दस आदमी रक्खे जाते हैं। प्रबन्ध-कुशलता की दृष्टि से इसमें हम कोई दोष नहीं मानते, अगर कार्याधिकारियों की नियुक्ति में वर्णगत या जातिगत भेद-भाव न रक्खा जाय। उच्च पदों पर कार्य करनेवाले योग्य व्यक्ति यदि भारतीय हों और कम वेतन पर कार्य करना उन्हें स्वीकार हो—और साधारण स्थिति में जिसकी हम आशा भी कर सकते हैं—तो अँगरेज़ों को नियुक्त करने की अपेक्षा भारतीयों की ही नियुक्ति को महत्त्व देना उचित है। न्याय-विभाग के सम्बन्ध में भी यही बात है। न्याय इतना सुलभ होना चाहिए कि साधारण जनता भी उससे पूर्ण लाभ उठा सके। उसे इतना पेचीदा अथवा उलझनदार नहीं होना चाहिए कि मुक़दमेंबाज़ी में फँसकर न्याय पाने का अधिकारी

बरबाद हो जाय। न्याय अगर ऐसा है कि जिसकी लम्बी थैली है, उसी की जीत भी होती है, तो इस प्रकार का न्याय सरकार के नैतिक पतन का कारण होता है।

मोहन—न्याय के सम्बन्ध में इस तरह का उच्च आदर्श तो इस समय दुर्लभ है। गाँवों में अकसर जो चोरियाँ हुआ करती हैं, उनमें ऐसी कितनी हैं, जिनका पता लग जाता हो और जिसकी चोरी हुई है सब माल उसे वापस मिल जाता हो। जब यह निश्चित है कि जो अपराधी होगा, उसे दंड दिया ही जायगा; जब यह भी निश्चित है कि साधारण जीवन की अपेक्षा जेल-जीवन में अधिक कष्ट होता है, तब कोई कारण नहीं कि अपराधियों का दल बराबर बस्ती में बना ही रहे। इसका स्पष्ट आशय यह है कि न्याय-विधान और व्यवस्था में कोई-न-कोई—कहीं-न-कहीं—त्रुटि अवश्य है।

बिहारी—बात यह है कि पुलिस रखने का वास्तविक उद्देश्य ही हमारे यहाँ बदला हुआ है। जिस पुलिस को जनता के शान्ति-स्थापन में हर प्रकार से सहायक होना चाहिए, जिसे सदा अपने आपको जनता का सेवक समझना चाहिए, वही उस पर अपना आतंक जमाय रखती है। जनता की जान-माल से रक्षा करना उसका कर्तव्य होना चाहिये। जो अधिकार उसके लिए निर्धारित कर दिये गये हैं, यदि वह उनका सदुपयोग नहीं करती, तो इसका साफ़-साफ़ मतलब यह है कि वह नैतिक रूप से इतनी गिर गयी है कि शासन और व्यवस्था का अंग न होकर वह वास्तव में लगभग उसी वर्ग के समान है, जिसके अपराधों से जनता को सुरक्षित रखना उसका परम कर्तव्य

होता है। अगर पुलिस अपना कर्तव्य ठीक ढङ्ग से पालन करे, तो न्याय विभाग तथा जेल का बहुतेरा व्यय आप-से-आप कम हो सकता है।

मोहन—सुना है चाचा, रूस में इस तरह के जेल हैं, जहाँ दंड देने का मुख्य उद्देश्य होता है, चरित्र में इस प्रकार का परिवर्तन करना, उसकी रुचि के अनुरूप आजीविका का ऐसा साधन सुलभ कर देना तथा ऐसा सुधार उत्पन्न कर देना, जिसके द्वारा अपराधी आप-से-आप इस योग्य बन जाय कि अपनी अवधि बिताने पर समाज के लिए चिन्ता तथा भय का पात्र न बनकर स्नेह, दया तथा सहानुभूति का पात्र हो और जीवन-निर्वाह के मार्ग में सर्वथा स्वतंत्र रहकर भी पूर्ण सफल रहे।

बिहारी—वास्तव में जेल-विभाग का उद्देश्य यहाँ भी ऐसा ही है। किन्तु अभी इस विषय में, कुछ कारणों से जिनमें विदेशी शासन मुख्य है, इस विभाग को यथेष्ट सफलता नहीं मिली है। किन्तु हम अपने विषय से कुछ दूर चले आये। तुमने कहा था कि परिवार पर मेरा शासन शिथिल और अव्यावहारिक है। लेकिन तुमने यह नहीं सोचा कि कोई भी शासन मनुष्य के विकास के लिए अन्तिम नहीं है। फिर उसके प्रत्येक प्रकार में अन्ततः प्रयोग का भाव भी तो मिश्रित रहता है। अगर दोनों भाई-बहिन आपस में मिल जायँ और सलाह करके यह स्थिर कर लें कि हम लोग खाने के समय आपस में लड़ेंगे नहीं, तो इस तरह का विधान उठा लेने में देर कितनी लगेगी। फिर अगर वे लोग अलग-अलग खाना खायेंगे, तो उन्हें

जब वह आनन्द नहीं मिलेगा जो साथ खाने पर मिलता, तो पछता-कर अगर वे उपर्युक्त नतीजे पर पहुँचें तो इसमें आश्चर्य्य क्या होगा ?

तब मोहन हँसने लगा। बोला—मैंने तो यह बात केवल मनो-विनोद के लिए कही थी।

उस दिन यह बात यहीं स्थगित हो गयी। दूसरे दिन जब बिल्लू और मुनियाँ प्रातःकाल साथ बैठकर खा रहे थे, तो बिहारी ने देखा—बिल्लू मुनियाँ से चुपके-चुपके कह रहा है—देखो, बाबू आ रहे हैं, अब उनके सामने चुप रहना!



पाँचवाँ अध्याय

जन-हितकारी कार्य



बहुत दिनों के बाद बिहारी राजाराम के घर गया था। पहुँचते ही राजाराम और मुन्नू ने उठकर उनका अभिवादन किया। बिहारी ने मुन्नू को देखते ही पूछा—कहो मुन्नू, आजकल तुम क्या किया करते हो? पढ़ाई तो चल रही है न?

मुन्नू जवाब भी न दे पाया था कि राजाराम ने कह दिया—कहाँ चल रही है? चल ही कैसे सकती थी? आप तो जानते हैं, देहात की क्या हालत है। सारा दिन केवल पेट भरने की समस्या को ही हल करने में लग जाता है, तो भी पूरा नहीं पड़ता। शिक्षा आदि की ओर ध्यान देने का समय कहाँ रहता है। किसी तरह अगर कुछ समय निकाला भी जाय, तो पढ़ने के लिए कहाँ से पुस्तकें आयें, कहाँ से आयें पढ़ाई के दूसरे ख़र्चे और शिक्षा का शुल्क। फिर जिन लोगों ने अपनी गृहस्थी का ख़याल न करके ज़र-ज़मीन बेचकर

17 6

बच्चों की शिक्षा में लगाया भी, उन्हीं ने क्या भर पाया? मान लीजिये कि मुन्नू की शिक्षा बीच में ही रुक गयी, केवल आर्थिक अवलम्बन के बिना। किन्तु सेठ चिरंजीलाल के सपूत ने तो एंट्रेंस परीक्षा भी पास की, इएटर में भी थोड़े दिन पढ़ा; पर नतीजा क्या हुआ? सेठजी ने सोचा था—मेरा लड़का डिप्टी-कलेक्टर होगा। किन्तु लड़का नायब-कानूनगो भी नहीं हो सका। अभी उस दिन की बात है, सेठ जी कहते थे—अगर साल-दो-साल उसे नौकरी न मिली, तो मुझमें और रास्ते के भिखारी में कोई अन्तर न रहेगा।

मुन्नू इसी समय बोल उठा—उधर क़ानूनगो साहब से सेठजी मिले और उनसे अपने बेटे की सिफ़ारिश कर देने के लिए जो कहा, तो उन्होंने जवाब दिया—पटवारियान के इम्तिहान में पहले बैठालो। पास हो जाने पर हमारे पास ले आओ। तब जो कुछ हो सकेगा, करूँगा। वह ज़माना गया, जब एंट्रेंस पास करने पर लोगों को क़ानूनगो की जगह मिल जाती थी। अब तो बी० ए० पास मारे-मारे फिरते हैं सेठजी। आप अभी हैं कहाँ?

राजाराम ने बात को आगे लेते हुए कहा—उधर जो सेठ ने लड़के से पटवारियान में बैठने के लिए कहा, तो सुनते हैं, उसने जवाब दिया—इस बार कही सो कही, पर अगर ऐसी बात दुबारा कहियेगा, तो मैं कुए में गिरकर अपनी जान दे दूँगा। इतने दिन अँगरेज़ी पढ़ने और ऐसे घर में जन्म लेने का अगर यही नतीजा है कि मैं पटवारी बनूँ, तो इससे तो अच्छा यह होगा कि मैं कुए में गिरकर इस दुनियाँ से ही छुट्टी ले लूँ।

बिहारी इसी समय बोल उठा—ग़लती मूल में ही है। जनहित-कारी कार्यों की ओर अगर सरकार का विशेष ध्यान हो, तो इस प्रकार की सारी कठिनाइयाँ दूर हो जायँ।

राजाराम ने पूछा—इन जनहितकारी कार्यों से आपका क्या अभिप्राय है?

बिहारी—शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा, कृषि-सुधार, उद्योग-धंधोंकी वृद्धि, निर्माण-कार्य तथा ग्राम-सुधार आदि जितने भी कार्य जनता के हितों से सम्बन्ध रखते हैं, वे सब जन-हितकारी कार्य कहलाते हैं। सबसे पहले हम शिक्षा को लेते हैं। उसका आदर्श यह होना चाहिये कि प्रत्येक बालक को, जो स्कूल जाने की अवस्था का हो, कम-से-कम प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा तो अवश्य होनी चाहिये। हमारा देश इस विषय में बहुत पिछड़ा हुआ है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा अनिवार्य्य तो हो ही वह निःशुल्क भी हो। प्रत्येक बालक को उच्च-से-उच्च शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण सुविधा होनी चाहिए। किसी भी देश की शिक्षा की यह स्थिति बड़ी भयावह है कि ग़रीबी के कारण उस देश के बच्चे शिक्षा से वंचित रहें। हमारे देश में बेकारी की समस्या भी बड़ी भीषण है। अतएव यहाँ अर्थकरी शिक्षा की विशेष आवश्यकता है। जब तक शिक्षा में आजीविका-प्राप्ति के साधनों का समावेश नहीं किया जाता जब तक कृषि-सम्बन्धी, औद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षण की ओर शिक्षा-विभाग का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट नहीं होता, तब तक देश की बेकारी का दूर होना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव है।

हमारे इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि साहित्य की शिक्षा पर ध्यान न दिया जाय। साहित्य की शिक्षा भी कम आवश्यक नहीं है, किन्तु इस समय की स्थिति को देखते हुए हमें अर्थकरी शिक्षा पर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है। क्या ही अच्छा हो, यदि इस देश में भी शिक्षा-सम्बन्धी एक ऐसी योजना के अनुसार कार्य किया जाय, जिसमें पचास वर्ष तक के वय का कोई भी व्यक्ति अशिक्षित रह ही न जाय। इस विषय में रूस का पंचवर्षीय आयोजन भी आंशिक रूप में, हमारे लिए एक आदर्श हो सकता है!

मुन्नू ने कहा—पिछले वर्ष अगर हमारी भैंस न मर गयी होती, तो खेती का काम ज्यों-का-त्यों चलता रहता। तब हमारा पढ़ना भी चलता रह सकता था। भैंस के मर जाने से आमदनी एकदम से घट गयी और गृहस्थी की दशा इतनी नाज़ुक हो गयी कि अगर मुझे कारिंदगीरी का काम ठाकुर साहब के यहाँ न मिल जाता, तो मेरा पनपना ही मुश्किल था।

बिहारी—जानवरों की चिकित्सा के प्रबन्ध का तो हमारे यहाँ सर्वथा अभाव है। अकसर गाँवों में जानवरों को ऐसी बीमारियाँ हो जाती हैं, जिनसे गाँव-के-गाँव तबाह हो जाते हैं। लेकिन सच पूछो तो जनता की चिकित्सा का भी हमारे देश में कोई बहुत अच्छा प्रबन्ध नहीं है। स्वास्थ्य-रक्षा विभाग से तो ऐसा सुप्रबन्ध होना चाहिए कि संक्रामक रोग—जैसे हैज़ा, मलेरिया, क्षय, प्लेग, इंफ्लूएंज़ा आदि तो मूल से नष्ट हो जायँ। जगह-ब-जगह अधिक-से-अधिक संख्या में ऐसे चिकित्सालय स्थापित होने की आवश्यकता है, जहाँ

चिकित्सा का इतना अच्छा प्रबन्ध हो कि जितने भी बीमार लोग चिकित्सालय में चिकित्सा प्राप्त करने अथवा नीरोग होने को उत्सुक हों, उनकी चिकित्सा का प्रबन्ध आसानी के साथ हो जाय और ग़रीब लोगों की चिकित्सा तो मुफ़्त में हो।

राजाराम—किन्तु उद्योग-धंधों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता सर्वप्रथम है।

बिहारी—बात यह है कि ग़रीबी और बेकारी इस कृषि-प्रधान देश की सर्व-प्रधान समस्या है। और जब तक देश का औद्योगीकरण नहीं होता, तब तक इस समस्या का समाधान होना सर्वथा असम्भव है।

राजराम—देश के औद्यौगीकरण से आपका क्या अभिप्राय है?

बिहारी—जिस तरह युद्ध के दिनों में शस्त्रास्त्रों तथा युद्ध-सम्बन्धी अन्य वस्तुओं के निर्माण का कार्य सरगर्मी के साथ किया जाता है, उसी तरह देश की ग़रीबी और बेकारी को दूर करने के लिए अधिक-से-अधिक रुपया उद्योग-धंधों की वृद्धि और उनके पुनर्निमाण में ख़र्च किया जाना चाहिए। कितने खेद की बात है कि जब कभी उद्योग-धंधों को उत्तेजना देने का प्रश्न सामने आता है, तो हमारी गवर्नमेंट, इतने बड़े प्रान्त के लिए, रुपये ख़र्च करने की बात केवल हज़ारों के अंकों में सोचती है, जब कि सोचना चाहिए, उसे करोड़ों में। आजकल सुनता हूँ, युद्ध में ब्रिटिश गवर्नमेंट तेरह करोड़ रुपया नित्य ख़र्च करती है। पर यदि इस विषय में इसका शतांश भी वह ख़र्च करे, तो देश का कितना बड़ा कल्याण हो सकता है!

राजाराम—किन्तु शहर की समस्याएँ देहात की समस्याओं से सर्वथा भिन्न हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि देहात के स्वार्थ भी शहर के स्वार्थों से सर्वथा अलग हैं। बड़े-बड़े उद्योग-धंधों की ओर अगर सरकार का ध्यान गया भी, तो देहात का तो कोई विशेष हित होगा नहीं।

बिहारी—तुम ठीक कहते हो। वास्तव में बड़े-बड़े औद्योगिक कार्यों के साथ-साथ घरेलू धंधों की भी अभिवृद्धि को उत्तेजन मिलना चाहिए। अधिकांश रूप से उन्हीं वस्तुओं के उत्पादन की विशेष आवश्यकता है, जो बाहर से आती हैं। पर यह योजना भी पूर्णरूप से सफल तभी हो सकती है, जब इस विषय में 'पंचवर्षीय आयोजन' का प्रयोग किया जाय।

राजाराम—इस खेती से तो मेरी तबियत ऊब गयी है। चाहे जितना परिश्रम करो, फल कुछ नहीं। मुन्नू को तुमने इससे पहले जब देखा था, तब के और आज के शरीर में कोई स्पष्ट अन्तर जान पड़ा या नहीं?

बिहारी—जहाँ तक काम का सम्बन्ध है, खेती में लगे रहने पर शरीर स्वस्थ ही रहता है। परिश्रम करना सदा अच्छा होता है। किसान लोग लाख दुखी हों, किन्तु दुर्व्यसनों से घिरी शहर की जनता के स्वास्थ्य की अपेक्षा गांवों की जनता का स्वास्थ्य फिर भी, अपेक्षाकृत, अच्छा रहता है। यह बात दूसरी है कि अधिकांश किसानों को खेती से, लाभ होने के बजाय हानि ही अधिक होती है।

राजाराम—पर हमारे देश के गिने-चुने नेताओं में भी कितने

ऐसे हैं, जिन्होंने कृषकों की इस स्थिति पर विशेष ध्यान दिया है? अच्छा, दूसरों की बात दूर रही, तुम्हीं बताओ, खेती से किसानों को जो निरंतर हानि होती है, उसका कारण क्या है? ज़रा मैं भी तो देखूँ, तुम खुद कितने गहरे पानी में हो।

बिहारी—इसके मुख्य तीन कारण हैं। किसानों की ग़रीबी उनमें मुख्य है। उसके बाद उनमें कृषि-सम्बन्धी शिक्षा के ज्ञान का अभाव आता है। इसके सिवाय खेतों का छोटे-छोटे टुकड़ों में दूर-दूर होना भी एक कारण है। लेकिन इसके लिए मैं अपने देश की कृषक जनता को दोषी नहीं मानता। कृषि-सम्बन्धी-शिक्षा का अभाव यदि किसानों में है, तो इसका उत्तरदायित्व सरकार पर है। कृषि-सम्बन्धी सरकारी खेतों का कार्य, माना कि जहाँ-तहाँ वे इस विषय में कुछ कार्य कर रहे हैं, किसानों के सामने एक आदर्श उपस्थित करना नहीं है? अगर सरकारी कृषि-विभाग के विशेषज्ञ इस ढङ्ग से कार्य नहीं करते कि किसानों में खेती करने के नये तरीक़ों का ज्ञान ख़ूब फैले, उनका अधिक-से-अधिक प्रचार हो, तो फिर उनका होना-न-होना बराबर है। आकर्षक साधनों के द्वारा नये ढङ्ग से खेती करने के तरीक़ों का प्रचार करना तो दूर रहा, वे लोग किसानों के आगे इतनी लम्बी-चौड़ी योजनाएँ उपस्थित करते हैं, जो अत्यधिक व्यय-साध्य तो हैं ही, बहुत अधिक ग़रीब किसानों के लिए उतनी ही अव्यावहारिक हैं, जितनी स्वप्न अथवा कल्पना की बातें! कभी-कभी मेरे मन में यह विचार भी आता है कि सरकार कृषि-सुधार के सम्बन्ध में जिस ढङ्ग से काम कर रही है उससे इस विषय से किया गया ख़र्च बहुत अंशों

में व्यर्थ ही जाता है।

राजाराम—पर अभी आपने खेतों की चकबन्दी की बात कही थी। मैं मानता हूँ कि इससे हमको लाभ हो सकता है; किन्तु यह कार्य तो सामूहिक ढङ्ग से करने का है। मैं अकेला यदि इसे करना भी चाहूँ, तो कैसे कर सकता हूँ।

बिहारी—हाँ, जब तक गाँव के सब या अधिकांश किसान इस विषय में एक मत नहीं होते, तब तक यह कार्य होना वर्तमान परिस्थिति में तो दुष्कर ही है। इसी प्रकार सहयोग-समितियों और विशेष रूप से जीवन-सुधार-समितियों की स्थापना से भी किसानों का बहुत हित हो सकता है। इस समय भी दस वर्ष अथवा पंच वर्षीय आयोजन से विशेष सफलता मिल सकती है।

राजाराम—देहात में आप लोग आते ही नहीं। आते भी हैं, तो एक-आध दिन रहे और चलते बने। यह तो हाल है! कोई काम भी कैसे छेड़ा जाय! मानता हूँ कि देहात में आने पर कष्ट मिलता है। किन्तु साधारण कष्टों को तो स्वीकार करना ही पड़ता है। कल ही की बात ले लीजिये। आप जानते हैं कि यहाँ की सड़कें कितनी ख़राब रहती हैं। ऐसी दशा में आप को अगर नथुनों के द्वारा छटाँक-आधपाव धूल फाँकने को मिल ही जाय, तो इसमें आश्चर्य्य क्या है!

बिहारी ने पहले मुसकराते हुए किन्तु फिर तत्काल गम्भीर होकर कहा—मेरे आने-जाने की बात जाने दो। मेरा तो घर ठहरा। कष्ट आने में चाहे जितना हो, आना तो पड़ेगा ही। किंतु अगर सड़कें पक्की करा दी जायँ, तो माल के जाने-आने में भी तो विशेष सुविधा

हो सकती है। इसके सिवा वर्षाऋतु में जब नदी-नाले तथा तालाब चारों ओर भर जाते हैं, सड़कों को तालाब से अलग करके देखना और तदनुसार उनका व्यवहार करना दुष्कर हो जाता है, तब क्या बाहरी और क्या निकटस्थ लोगों को कितनी असुविधा होती है! सड़कों के बन जाने से यह असुविधा भी दूर हो सकती है।

राजाराम—लेकिन जब कभी किसी ज़िला-बोर्ड के सदस्य से इसकी चर्चा करता हूँ, तो यही उत्तर मिलता है कि इतना रुपया कहाँ से आये?

बिहारी—इस सम्बन्ध में भी उसी प्रकार की मनोवृत्ति बनाने की आवश्यकता है, जैसी युद्ध के समय में होती है। युद्धकाल में कर बढ़ाये जाते हैं और सभी विभागों के ख़र्चों में किफ़ायत की जाती है। इन सब कामों के लिए भी ऐसा ही किया जाय। इतने पर भी पूरा न पड़े, तो मैं तो कहता हूँ कि क़र्ज़ लिया जाय। रुपये की कमी के कारण जन-हितकारी कार्यों को रोकना देश की जागृति के मार्ग को अवरुद्ध करना है। मैं यह नहीं कहता कि अन्धाधुन्ध रुपया ख़र्च किया जाय। मितव्ययिता से काम लेना तो सदा लाभकारी होता है। किन्तु जन-हितकारी कामों में जब तक दिल खोलकर ख़र्च नहीं किया जाता, तब तक जागृतिकाल का सारा उल्लास, उसकी सारी स्फूर्ति मन्द रहती है। देशोन्नति के लिए यह आवश्यक है—अनिवार्य्य है।

यह वार्तालाप यहीं समाप्त होने जा ही रहा था कि मुन्नू के साथ सेठ चिरंजीलाल का वह लड़का भी आ पहुँचा। उसके आते ही राजाराम ने कहा—इसी लड़के को सेठजी चाहते हैं कि कहीं कोई

काम मिल जाय।

उसकी ओर मुख़ातिब होकर बिहारी ने कहा— अब इस समय तो मुझे अवकाश नहीं है। अगर तुम शाम के वक्त या रात में सात बजे के लगभग आजाओ, तो तुमसे बातें करूँगा। सबसे पहले मैं तुमको यह समझा देना चाहता हूँ कि मैट्रिकुलेशन तक की जो थोड़ी सी शिक्षा तुमने अँगरेज़ी में प्राप्त की है, वह आज की स्थिति को देखते हुए किसी भी प्रकार की नौकरी के लिए बिल्कुल नाकाफ़ी है। दूसरी बात यह है कि पटवारी का काम करना तो फिर भी अच्छा है। जब पढ़े-लिखे लोग—बेकारी में पड़कर भूखों मरने लगते हैं, तब विवश होकर वे गली-गली मारे-मारे फिरते और लोगों के जूते साफ़ करने और उनपर पालिश करने तक का काम करने पर विवश हो जाते हैं। आज की आवश्यकताएँ इतनी अधिक और ऐसी ख़र्चीली हैं कि विवश होकर आदमी को सब कुछ करना पड़ता है। जिस समय पेट में भूख की आग लगती है, उस समय कुलीनता का सारा अभिमान मिट्टी में मिल जाता है।

इसी समय मुन्नू बोल उठा—आज इन्हें भी तो सेठ जी ने घरसे निकाल दिया है। उनका कहना है कि या तो किसी काम में लगो और घर पर आनन्द-पूर्वक रहो, नहीं तो चाहे जहाँ जाओ और चाहे जो कुछ करो, मुझसे कोई सरोकार नहीं।

राजाराम तो उस समय एकाएक अवाक् से हो उठे। पर बिहारी ने सान्त्वना देते हुए कहा—लेकिन तुम घबराना मत। मैं तुम्हें ऐसे काम में लगा देना चाहूँगा कि तुम्हारा घर भी न छूटे और तुम्हारे पिता जी भी सन्तुष्ट रहें।

छठा अध्याय

व्यवसाय-सम्बन्धी कार्य



"माघ मास प्रारम्भ हो गया। अमावस भी निकट आ रही है। इलाहाबाद चलोगे नहीं राजाराम ?"

"माफ़ कीजिये मुझे। किसी ऐसे व्यक्ति को इसके लिए चुनिये, जो कुछ फल सके। मुझे ले जाने से भला क्या लाभ होगा ?"

"अच्छा, तो आप यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मैं प्रयागराज का पंडा हूँ और प्रयाग चलने के लिए इस हेतु प्रस्ताव करता हूँ, जिसमें कुछ दान-दक्षिणा पा जाऊँ। नौकरी न करता होता, तो ऐसा सोचना भी ठीक होता। फिर अगर व्यवसाय करने पर मैं तुल भी जाऊँ, तो एक-से एक अच्छे व्यवसाय हैं। दान-दक्षिणा लेने का व्यवसाय मैं कभी पसन्द न करूँगा। यों व्यवसाय कोई भी हो, उसके करने में कोई बुराई नहीं है। आज तो ऐसा युग है कि सरकार को भी व्यवसाय-सम्बन्धी कार्य करने पड़ते हैं। मैं तो फिर भी एक

साधारण व्यक्ति हूँ।"

राजाराम ने इस पर हँसते हुए कहा—बात तो सचमुच मैंने मज़ाक में ही कही थी, किन्तु निकल पड़ी उसमें एक काम की बात। आपने अभी कहा—व्यवसाय तो सरकार तक करती है। ज़रा बतलाइये किस तरह ?

बिहारी—अरे बिल्कुल साधारण बात है। रेल, नहर, डाक, तार, जंगलात आदि महकमों के संचालन में सरकार को ही तो कार्य करना होता है।

राजाराम—लेकिन इन मद्दों में सरकार ख़र्च भी तो करती है।

बिहारी—किन्तु सरकार इन व्यवसायों में जो ख़र्च करती है, वह आमदनी से न लगकर पूँजी से लगता है। व्यक्ति का उद्देश्य रहता है निजी लाभ करना, किन्तु सरकार का उद्देश्य रहता है जनता को लाभ पहुँचाना।

राजाराम—किन्तु सुनते हैं, सरकार को रेलवे से कोई विशेष लाभ नहीं होता।

बिहारी—प्रत्यक्ष रूप से सरकार को रेलवे से विशेष लाभ नहीं होता। इस विषय में उसका मुख्य सिद्धान्त यह रहता है कि पूँजी ऐसे कामों में लगायी जाय, जिनसे चालू ख़र्चा निकालकर व्याज तो निकल ही आये। परन्तु सरकार को कुछ कार्य ऐसे भी करने पड़ते हैं, जिनसे इतनी आमदनी भी नहीं होती कि पूँजी का व्याज निकल सके। ऐसे कामों को केवल जनता के लाभ की दृष्टि से करना होता है। जनता के हित-मात्र को दृष्टि में रखकर बहुधा

ऐसे कार्य करती है, जिसमें उसे पूँजी ऋण के रूप में लेनी पड़ती है। जिस समय भारत में रेलवे लाइनें लायी गयीं उस समय जिन कम्पनियों ने इसका ठेका लिया, उस समय सरकार को उन्हें एक निश्चित लाभ का आश्वासन देना पड़ा था। बाद में जब वास्तविक रूप से उन कम्पनियों को उतनी आमदनी नहीं हुई, जितनी होने की जिम्मेदारी सरकार ने ली थी, तब सरकार को अपने कोष से कम्पनियों का घाटा पूरा करने के लिए विवश होना पड़ा।

राजाराम—रेल से तो जनता को लाभ भी हुआ है। पर कृषक जनता से आजकल इतनी अधिक आबपाशी कर वसूल किया जाता है कि वे बेचारे पनपने नहीं पाते। इसी साल अधिक नहीं तो पचास रुपये केवल आबपाशी के मुझे देने पड़े हैं। यद्यपि सारे ख़र्चे निकाल कर पचास पैसे की भी बचत मुझे नहीं हुई। यह लूट नहीं तो और क्या है?

बिहारी—नहरों के संचालन पर वास्तव में सरकार ने उतना ध्यान नहीं दिया, जितना उसे देना चाहिए। आबपाशी-सम्बन्धी अब भी ऐसे बहुतेरे क्षेत्र हैं, जहाँ जनता को अधिक-से-अधिक लाभ पहुँचाया जा सकता है, किन्तु सरकार वहाँ पूँजी लगाने से इसी लिए हिचकती है कि सम्भव है, ब्याज तक न निकले। रेलवे के सम्बन्ध में सरकार ने जैसी दूरदर्शिता और आंशिक रूप से उदार नीति से काम लिया, नहरों के सम्बन्ध में उसकी नीति वैसी ही अनुदार है।

राजाराम—इसका कारण क्या है?

बिहारी—कारण स्पष्ट है। रेलों के सम्बन्ध में सरकार ने जो पूँजी लगाई है, उससे उसका व्याज वसूल हो जाता है, पर सब नहरों से इसकी सम्भावना कम है। आज भी सरकार को ऐसी बहुतेरी नहरें जारी रखनी पड़ती है, जिनमें उसे घाटा होता है। रेलों से सरकार को अप्रत्यक्ष रूप से भी बहुत लाभ होता है। हमारी सरकार अँगरेज़ है। अतएव जिन कामों से अँगरेज़ कम्पनियों को लाभ होता है, उनमें उसका भी हित है। रेलवे सम्बन्धी सारा सामान इङ्गलैण्ड से आता है। अतएव उन पर जो भी पूँजी वह लगाती है उसका अप्रत्यक्ष लाभ उसके देशवासियों को होता है। नहरों की स्थिति इससे सर्वथा विपरीत है। उन पर जो भी सामान लगता है, उसका अधिकांश भाग इसी देश का होता है। मज़दूरी का ख़र्च भी इसी देश में रहता है। इस तरह क्या प्रत्यक्ष और क्या अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में नहरों से लाभ न होने के कारण सरकार की अधिक सहानुभूति उनके साथ नहीं है। यही कारण है कि सरकार ने नहरों को उतना प्रोत्साहन नहीं दिया, जितना उसे देना चाहिये।

राजाराम—तब तो हमें इसी निश्चय पर पहुँचना पड़ेगा कि रेलों के द्वारा सरकार ने विदेशी व्यापार को ही प्रोत्साहन दिया है।

बिहारी (हँसते हुए)—यद्यपि सरकार के लिए वह व्यापार निज-देशीय है! साथ ही रेलों से हमारे देश का अपकार भी कम नहीं हुआ। सच पूछो तो उद्योग-धन्धों के विनाश में रेलों का भी बहुत बड़ा भाग है।

राजाराम—और जंगलों के सम्बन्ध में?

बिहारी—जंगलात के महकमें में भी सरकार की विशेष दिलचस्पी नहीं है। उस पर भी उसने विशेष पूँजी नहीं लगायी। सबसे बड़ी कठिनाई इस विषय में तब होती है, जब सरकार अपने उद्देश्य से च्युत हो जाती है। व्यक्ति के व्यवसाय के लिए जो सिद्धान्त लागू होते हैं, वे सरकार के सम्बन्ध में लागू नहीं होते। व्यक्ति तो व्यवसाय अपने निजी लाभ के लिए करता है; किन्तु सरकार जो व्यवसाय करती है, उसमें उसका प्रधान लक्ष्य रहता है जनता का लाभ। पर अगर सरकार लाभ प्राप्त करने की ही निरन्तर चेष्टा करती है, तो वह लाभ व्यावसायिक लाभ न होकर टैक्स हो जाता है। और ऐसी स्थिति उत्पन्न होना कम-से-कम सरकार के लिए तो सर्वथा अनुचित है।

राजाराम—अच्छा तो रेल के टिकट, नहरों का आबपाशी कर, डाक-विभाग में डाक के टिकट, तार का चार्ज, इन सब की दरें सरकार किन सिद्धान्तों के अनुसार निश्चित करती है?

बिहारी—इस विषय में भी यही विचार रहता है कि कम से कम इतनी आमदनी हो जाय कि ख़र्च और ब्याज निकल आवे। इन सब विभागों से सम्बन्ध रखनेवाले कार्यों और तत्सम्बन्धी पदार्थों की दरें जितनी ही सस्ती होती हैं, देश के उद्योग-धन्धों में उतनी ही उन्नति होती है और स्वदेशी व्यापार को उतना ही प्रोत्साहन मिलता है। भारतीय रेलों के सम्बन्ध में सबसे बड़ा आक्षेप यही किया जाता है कि उससे भारतीय उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन न मिलकर विदेशी व्यापार को मिलता है।

राजाराम—किन्तु डाक और तार-विभाग से तो जनता को वास्तव में बहुत लाभ होता है।

बिहारी—डाक-विभाग के सम्बन्ध में भी सरकार की नीति उतनी उदार और हमारे देश के लिए सर्वथा लाभकर नहीं है, जितनी होनी चाहिए।

राजाराम—आप कहते क्या हैं!

बिहारी—मैं बिल्कुल ठीक कह रहा हूँ। पोस्टेज के रेट्स आजकल तो इतने बढ़े हुए हैं कि ज्ञान के प्रसार में एक तरह का अवरोध-सा उपस्थित हो गया है। शिक्षा के विस्तार से ज्ञान की वृद्धि होती है। और ज्ञान की वृद्धि का सबसे बड़ा साधन है साहित्य और समाचार-पत्रों की उन्नति। साहित्य के प्रचार का हाल यह है कि यदि किसी पाठक को कोई पुस्तक ॥) मूल्य की मँगानी हो, तो सात आने उस पर पोस्टेज लग जायगा। ज्ञान के प्रसार में इससे बड़ी बाधा और क्या हो सकती है? देश की जागृति के साथ यह कितनी बड़ी शत्रुता है, कैसा प्रचंड विरोध! संवाद-पत्रों और मासिकपत्र-पत्रिकाओं की जो सीमित रूप-रेखा हम देखते हैं, उसका भी मुख्य कारण पोस्टेज की दरों की भयानक वृद्धि ही है। पोस्टकार्ड का दाम जब एक पैसा था, तब कितने ही व्यापारी अपनी वस्तुओं का आर्डर मँगवाने के लिए अपने ग्राहकों के पास जवाबी-कार्ड भेजते थे। निस्सन्देह इस नीति से उनको लाभ होता था। पर आजकल, जब पोस्टकार्ड का दाम तिगुना हो गया है, तब कौन व्यापारी इस नीति का अवलम्बन करने का साहस

कर सकता है ? पार्सल और पैकेट के सम्बन्ध में भी ऐसी ही अड़चनें उपस्थित हैं। यदि सरकार अपने देश की हो, अगर वह यह अनुभव करे कि राष्ट्र के नव-निर्माण के इस पवित्र समय में कम-से कम ज्ञान-प्रसार से सम्बन्ध रखनेवाली इस मद में तो जनता का ही लाभ देखना उचित है, तो क्या पोस्टेज की दरें कभी ऐसी बढ़ सकती हैं ?

राजाराम—सचमुच इस ढङ्ग से मैंने कभी इस विषय को नहीं सोचा था। अच्छा, महकमा जंगलात के सम्बन्ध में सरकार की क्या स्थिति है ?

बिहारी—जंगलों से दो प्रकार की लकड़ी निकलती है। एक तो इमारती, दूसरी जलाने योग्य। इसके सिवा घास, लाख, बाँस, टरपिंटाइन का तेल आदि वस्तुएँ हैं। इस महकमे को भी जनता के लिए जितना लाभदायक बनाया जा सकता है, उतनी अनुकूल दृष्टि सरकार की नहीं है, सरकार इनमें भी पूँजी लगाना नहीं चाहती। अगर इस सम्बन्ध में वह उदारनीति से काम ले, तो देश के अन्दर कम-से-कम काग़ज़ के व्यापार को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिल सकता है।

राजाराम—बड़ी मुश्किल तो यह है कि एक ओर आप कहते हैं कि सरकार व्यवसाय करे, दूसरी ओर आप उससे जनता का हित देखना चाहते हैं। पर दोनों बातें तो परस्पर विरोधिनी हैं, आप इस बात पर विचार नहीं करते।

बिहारी—मैं पहले ही कह चुका हूँ कि व्यक्ति का व्यवसाय जिस

उद्देश्य को लेकर होता है, वह उद्देश्य सरकार के व्यवसायिक कार्यों के सम्बन्ध में लागू नहीं होता। सरकार को तो केवल जनता का हित मात्र देखना होता है। व्यवसाय के सम्बन्ध में तो एकमात्र उद्देश्य उसका यही होना चाहिए कि जनता का अधिक-से-अधिक लाभ हो, भले ही किसी व्यवसाय से उसको घाटा हो। जनता को अधिक लाभ पहुँचाने के लिए उन्नत देशों की सरकारें ऐसा करती हैं। यह ऐसी कोई नयी बात नहीं है। फिर भारत की स्थिति तो इस समय ऐसी है कि सरकार को अपनी पूँजी पर थोड़े से ब्याज का लोभ त्याग देना ही उचित है। अभी तुमने आबपाशी की दरों की अधिकता की शिकायत की थी। दरें निस्सन्देह अधिक हैं, पर यदि वे कम कर दी जायँ और खेती की उपज में वृद्धि हो जाय, तो क्या उससे सरकार की आय में वृद्धि नहीं होगी। उपज की वृद्धि से जनता के सुख-शान्ति की वृद्धि होगी, धनी लोगों को भी अधिक आमदनी होगी। और आमदनी अधिक होने से आयकर अधिक मिलेगा। इस प्रकार सरकार अगर व्यापक दृष्टि से काम ले, तो जनता को लाभ पहुँचाने के साथ-साथ अपना घाटा भी उत्तरोत्तर कम करके ऐसी स्थिति में आ सकती है, जब उसे क़तई घाटा न हो और एक दिन ऐसा भी आ जाय, जब उसे अपनी लगाई हुई पूँजी पर ब्याज पूरा मिल सके।

यह वार्तालाप तो यहीं समाप्त हो गया। किन्तु उसी समय मुन्नू ने आकर कह दिया कि ढाई बीघावाला खेत तो दादा अधूरा ही रह गया और आज बंबा भी टूट गया।

राजाराम ने मन-ही-मन सोचा कि इसका मतलब यह है कि इस फ़सल में गेहूँ की पैदावार की ओर से हमें निराश होना पड़ेगा। फिर अधीर होकर पूछा—कितना खेत सिंचाई के लिए बाक़ी रह गया?

मुन्नू ने कहा—अभी दोपहर को तो मुझे उसमें नाली ले जाने का अवसर ही मिला था। बहुत हुआ होगा, तो आधा हुआ होगा।

बिहारी ने देखा, राजाराम अभी तक जिस उत्साह के साथ बात-चीत कर रहे थे, वह अब बात-की-बात में ठंडा पड़ गया है।



सातवाँ अध्याय

आय के साधन

दोपहर हो चुकी है। मुन्नू अपने पिता राजाराम के साथ खाना खाकर अभी उठा ही है। बिहारी को भोजन किये हुए देर हुई। उसके हाथ में एक समाचार-पत्र है और वह लेटे-लेटे उसे पढ़ रहा है। राजाराम ने पूछा—कोई नयी ख़बर है जीजाजी ?

बिहारी ने उत्तर दिया—नयी ख़बरें तो समाचार-पत्र में रहती ही है। गांधीजी के वायसराय से मिलने की फिर सम्भावना पायी जाती है। इस बार सर सप्रू प्रयत्न कर रहे हैं··· सरदार पटेल का एक वक्तव्य निकला है, जिसमें उन्होंने कहा है कि संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो कांग्रेस को अपने व्रत पर दृढ़ रहने से डिगा सके।······मिस्टर मानवेन्द्रराय युद्ध के अवसर पर सरकार का साथ देनेवाला मन्त्रिमण्डल बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। कानपुर

के कई मुहल्लों में मकान-भाड़ा कम करने का आन्दोलन ज़ोरों के साथ उठनेवाला है।······एक प्रोफ़ेसर ने घोषणा की है कि जो छात्राएँ सन् १९४१ की सम्मेलन-परीक्षाओं में अर्थशास्त्र विषय लेकर परीक्षा में बैठेंगी, उनमें से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर सर्वाधिक अंक पानेवाली छात्रा को वे उत्तमा परीक्षा में बैठने के लिए अर्थशास्त्र की समस्त पुस्तकों का एक सेट प्रदान करेंगे। साथ ही परीक्षा में बैठने के लिए परीक्षा-शुल्क भी देंगे।··· गांधी नगर के एक मकान में पाइप का कर न चुका सकने के कारण पाइप का सम्बन्ध (connection) काटने के सिलसिले में म्युनिसिपल-बोर्ड के जो कर्मचारी आये हुए थे, उनके साथ मकान के किरायेदारों का झगड़ा हो गया है। एक कर्मचारी का तो सिर फट गया है। किरायेदार ज़मानत पर छोड़ दिया गया है।

राजाराम बोले—वाह! समाचार तो बड़े ताज़े हैं। फिर मुन्नू की ओर देखकर कहा—सम्मेलन की कृषि-विशारद-परीक्षा में बैठोगे? लेकिन जीजाजी, क्या इसका शुल्क माफ़ हो सकता है?

बिहारी—शुल्क तो देना ही पड़ता है। वह अनिवार्य होता है।

इसी समय पड़ोस से राधाकृष्ण शुक्ल ने आकर दस अमरूद राजाराम को देते हुए कहा—इलाहाबाद से पार्सल द्वारा आये हैं।

राजाराम ने आश्चर्य के साथ कहा—अच्छा! लेकिन हमारे यहाँ लाने की कोई ऐसी विशेष आवश्यकता तो थी नहीं। अभी उस दिन जीजाजी ले ही आये थे।

मुन्नू इसी समय बोल उठा—कितना टैक्स देना पड़ा?

मुन्नू के प्रश्न में टैक्स शब्द के अनुचित प्रयोग पर बिहारी के मन में कुछ खटक उत्पन्न हो गयी थी। राधाकृष्ण ने उस खटक को अपने उत्तर से स्पष्ट करते हुए कहा—टैक्स उसे नहीं कह सकते। अँगरेज़ी में ही कहना हो, तो फ्रेट कहेंगे। लेकिन अपने यहाँ तो इसके लिए भाड़ा शब्द ही अधिक प्रयुक्त होता है। जो हो, दस सेर का पार्सल था और आठ आने में आया है। फिर राजाराम की ओर देखकर राधाकृष्ण ने कहा—राजा भैया, इलाहाबादी अमरूद एक ऐसी चीज़ है, जिसे लेने में सब को प्रसन्नता ही होती है। आप सौभाग्यशाली हैं कि आपके सम्बन्धी इलाहाबाद से तरह-तरह की चीज़ें भेज सकते हैं। तभी तो आपके यहाँ अमरूद देने में मुझे भी एक अनोखी प्रसन्नता होती है।

राजाराम हँसने लगे। बोले—वाह! बात तो तुमने बड़ी बारीक कह दी। जो हो, इस कृपा के लिए धन्यवाद। लेकिन एक बात की शर्त कर लो, तो और भी अच्छा हो। अब इलाहाबाद से तुम्हारे यहाँ जो कुछ भी आये, सब में मुझे इसी औसत से हिस्सा देते रहा करो।

तब राधाकृष्ण भी हँसने लगा। बोला—वाह! यह आपने ख़ूब कहा। इसका मतलब तो यह हुआ कि मेरे यहाँ इलाहाबाद से आने वाले माल पर आप एक तरह का कर लगाना चाहते हैं! क्यों बिहारी बाबू, क्या कहेंगे उसे आप? कर ही तो कहेंगे?

बिहारी ने मुसकराते हुए कहा—हाँ, कर ही उसे कहना चाहिए। चाहो तो चुङ्गी भी कह सकते हो। बात यह है कि अर्थशास्त्र में कर,

शुल्क और भाड़ा—राज्य के लिए ये आय के साधन माने गये हैं। ये पारिभाषिक शब्द हैं और जब व्यवहार में आते हैं, तो इनके स्पष्टीकरण में कभी-कभी बड़ी उलझन उपस्थित हो जाती है।

राधाकृष्ण ने मैट्रिक से पढ़ना छोड़ा है। इण्टर में गया होता, तो अर्थशास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्तों को थोड़ा-बहुत समझता भी होता। और तब सम्भव था कि इस विषय की छानबीन करने की ओर उसकी विशेष उत्सुकता न भी होती। किन्तु उसने तो अर्थशास्त्र में प्रवेश तक नहीं कर पाया था। अतएव उसने अत्यधिक उत्सुकता से कहा—कष्ट न हो, तो इस विषय में कुछ विस्तार से बतलाने की कृपा कीजिये।

बिहारी ने कहा—सभ्यता के आदिकाल में राजा के साथ ज्यों ही प्रजा का सम्बन्ध स्थापित हुआ, त्यों ही राजा को अपने निजी तथा राजकीय कार्यों के लिए प्रजा से कुछ द्रव्य लेने की आवश्यकता हो गयी। विभिन्न देशों में उस द्रव्य के लेने के नाना रूप और प्रकार थे। प्रारम्भ में तो प्रजावर्ग अपनी इच्छा से ही राजा को, एक निश्चित मात्रा में, धन दे आता था। अब इसका रूप बदल गया है। अब राजा या उसकी सरकार की ओर से प्रजा से कर के रूप में धन प्राप्त करने की व्यवस्था रहती है। इस प्रकार राज्य की आय के कई साधन हो जाते हैं। जैसे—(१) सरकार कुछ सम्पत्ति पर अपना निजी अधिकार रखती है, उसकी व्यवस्था वह स्वयं करती है। (२) जो लोग अपना कोई उत्तराधिकारी छोड़े बिना मर जाते हैं, उनकी सम्पत्ति की अधिकारिणी सरकार होती है। (३) युद्ध का अवसर उपस्थित होने

पर प्रजाजन स्वेच्छा से कुछ धन भेंट करते हैं (४) सरकार कभी-कभी स्वयं किसी कार्य-विशेष के लिए चन्दा करती है। इसी प्रकार दंड-स्वरूप भी उसे कुछ धन प्रायः प्रजाजन के अपराधी-वर्ग से मिल ही जाता है। (५) जब कभी वह कोई व्यवसाय करती है तो वस्तुओं की दर, महसूल अथवा किराये के रूप में उसे कुछ धन मिलता है। (६) न्याय तथा प्रबन्ध विभाग में कुछ कार्यों के लिए उसे शुल्क की व्यवस्था करनी पड़ती है। (७) इसके सिवा सरकार कुछ सिद्धान्तों के आधार पर कर भी लगाती है।

राजाराम—तब तो जिस समय राजा प्रजा से ज़बरदस्ती कर न लेकर इस भार को स्वतंत्रता-पूर्वक प्रजाजन पर ही छोड़ देता होगा, उस समय प्रजा बहुत सुखी रहती होगी!

बिहारी—उस समय सभ्यता का इतना विकास ही कहाँ हुआ था! राजा के कर्तव्य भी बहुत सीमित थे और मनुष्य को ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी उन्नति करने की इतनी सुविधाएँ भी कहाँ प्राप्त थीं! उस समय तो प्रजा के जान-माल की रक्षामात्र सरकार का कर्तव्य होता था। मनुष्य की ज्ञान-वृद्धि और समाज-संगठन के प्रति राज्य का कोई भी कर्तव्य निश्चित नहीं था।

राधाकृष्ण—लेकिन बिहारी बाबू, राज्य के लिए आय के जो साधन आपने अभी बतलाये हैं, उनमें कुछ तो बहुत ही साधारण अथवा यों कहिये कि नगण्य ही हैं।

बिहारी—निस्सन्देह। प्रारम्भ में बतलाये गये चार साधन ऐसे ही हैं। (१) कुछ सम्पत्ति पर किसी भी प्रकार की सरकार को

अधिकार रखना ही पड़ता है। उसका प्रधान उद्देश्य आय न होकर व्यवस्था रहता है। (२) बिना उत्तराधिकारी छोड़े हुए लोगों के मरने पर जो सम्पत्ति सरकार को मिलती है, उसमें सरकार की कोई नीति-विशेष अथवा चेष्टा-विशेष नहीं होती। अगर मनुष्य इतना समर्थ हो जाय कि वह अपना उत्तराधिकारी छोड़ ही जाय, तो सरकार इस परिस्थिति में कुछ नहीं कर सकेगी और इस मद्द में उसे किसी प्रकार की आय न होगी। (३) युद्ध का अवसर उपस्थित होने पर जो प्रजाजन स्वेच्छा से सरकार को कुछ धन भेंट करते हैं, उनका उद्देश्य राज्य की आय-वृद्धि न होकर एक विशेष परिस्थिति उपस्थित होने पर संकट-निवारण मात्र होता है। (४) सरकार जब स्वयं चन्दा करती है, तब भी उसका प्रधान लक्ष्य आय-वृद्धि नहीं होता। इसी प्रकार दंड-स्वरूप जब उसे कुछ धन मिल जाता है, तब भी प्राप्तव्य सम्पत्ति अपराधों के निवारण मात्र के लिए आती है। यदि मनुष्य यथेष्ट विवेकशील हो जाय और वह कोई भी ऐसे अपराध न करे, जिस पर उसे दंड-स्वरूप कुछ धन देने के लिए विवश होना पड़ता है, तब इस मद्द से सरकार को कुछ भी आय हो नहीं सकती।

तब राजाराम ख़ुशी के मारे मानो उछल पड़े, और बोले—वाह! कैसा कमाल किया है जीजा जी आपने! वाह! कुछ समझे राधा-कृष्ण? जीजा जी घूम-फिर कर उन्हीं तीन मद्दों पर आ गये। अर्थात् भाड़ा, शुल्क और कर।

राधाकृष्ण की मुद्रा पर भी विस्मय और हर्ष छा गया। किन्तु फिर गम्भीर होकर उसने कहा—पर ये शब्द कहीं-कहीं मुझे एक-सा

अर्थवाचक जान पड़ते हैं।

मुसकराते हुए बिहारी ने कहा—अच्छा, कोई उदाहरण दो।

राधाकृष्ण—मकान के उपयोग के लिए कोई आदमी मकान-मालिक को जो रक़म प्रतिमास देता है वह तो भाड़ा हुआ। पर उसी मकान को रखने के कारण जो द्रव्य मकान-मालिक म्युनिसिपैलिटी को देता है, वह कहलाता है टैक्स।

बिहारी—दोनों परिस्थितियों में फिर भी अन्तर है। मकान चाहे किराये पर उठा हो, चाहे वह ख़ाली ही पड़ा हो, पर उस पर टैक्स तो मकान-मालिक को देना ही पड़ेगा। मकान-भाड़ा ऐसी चीज़ है कि मालिक-मकान चाहे ले, चाहे न ले, चाहे कम ले, चाहे अधिक। परन्तु टैक्स तो निश्चित रूप में लगेगा ही।

राधाकृष्ण—तो आप कहना यह चाहते हैं कि कर अनिवार्य्य है और भाड़ा अनिवार्य्य नहीं है।

बिहारी—इसके सिवा कर में लाभालाभ का विचार नहीं होता। भाड़ा में उपभोग के रूप का लाभ सम्मिलित है।

राधाकृष्ण—अच्छा तो इस प्रकार जो मालगुज़ारी दी जाती है, वह भी टैक्स हुई।

बिहारी—निस्संदेह।

राजाराम से नहीं रहा गया। बोले—सड़क पर हम साइकिल से चलकर लाभ उठाते हैं। तब हम से साइकिल रखने का कर लगता है! पर अगर हम रेल पर चढ़कर आते हैं, तो वह भाड़ा कहलाता है।

राधाकृष्ण—भाड़ा क्यों कहें हम? रेल से यात्रा करने के लिए

हम टिकटघर में जाकर टिकट ख़रीदते हैं। इसी प्रकार मुक़दमा लड़ने के लिए हम स्टैम्प पेपर ख़रीदते हैं। अब प्रश्न यहाँ यह उठता है कि टिकट के लिए दी हुई रक़म भाड़ा है, या शुल्क। जब कि स्टैम्प-पेपर को हम अदालत का शुल्क मान सकते हैं। इसी प्रकार पाइप इस्तेमाल करने पर उसका चार्ज टैक्स है, किन्तु मकान इस्तेमाल करने पर उसका चार्ज भाड़ा।

बिहारी—इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारा तर्क युक्ति-संगत है। किन्तु अर्थशास्त्र में इन शब्दों के व्यवहार के लिए कुछ सिद्धान्त तो निश्चित हैं ही। कर वह रक़म कहलाती है, जिसमें लाभ-हानि का प्रश्न नहीं होता। कुछ निश्चित धाराओं के अनुसार उसका देना अनिवार्य्य होता है। शुल्क का देना भी अनिवार्य्य होता है। किन्तु वह उन्हीं से लिया जाता है, जो सरकार अथवा संस्था-विशेष की व्यवस्था से लाभ उठाना चाहते हैं। भाड़ा अनिवार्य्य नहीं होता। उसके प्रकार भी कई होते हैं। इसके सिवा व्यक्ति को यह स्वतंत्रता रहती है कि चाहे जिस प्रकार का उपयोग करे। भाड़ा देनेवाला व्यक्ति केवल उपभोग का प्रतिफल देता है। उसके पश्चात् फिर उसका उससे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। शुल्क-सम्बन्धी उपभोग जीवन-पर्यन्त काम देता है। भाड़ा व्यवसाय का अंग है, शुल्क भी आंशिक रूप से व्यवसाय का अंग मान्य हो सकता है, किन्तु है वह मुख्यतः व्यवस्था का अंग। और कर तो पूर्णरूप से व्यवस्था का ही अंग है।

इसी समय मुन्नू ने प्रश्न कर दिया—अच्छा तो आबपाशी की दर

को हमें किस मद्द में लेना चाहिये ।

राधाकृष्ण—आबपाशी की दर को हमें शुल्क मानना पड़ेगा; क्योंकि उसके द्वारा हम सरकार की व्यवस्था से लाभ उठाते हैं।

राजाराम से फिर चुप रहा न जा सका। बोले—क्यों, हम उसे भाड़ा क्यों न कहें, जब कि उसका लाभ हमारे लिए सीमित समय के लिए होता है।

बिहारी ने कह दिया—तर्क तो ठीक है। बात यह है कि कुछ स्थितियाँ इस सम्बन्ध में वास्तव में विवाद-ग्रस्त हैं। प्रकारान्तर से ही उनका रूप बदल जाता है। किन्तु वे केवल अपवाद-मात्र हैं।

राजाराम ने इसी क्षण एक अमरूद उठाकर कहा—और इसी अपवाद के रूप में अब राधाकृष्ण तुमको यह अमरूद खाना पड़ेगा। देखो तो कितना मीठा है! ज़रा चाक़ू तो ले आना मुन्नू!



आठवाँ अध्याय

कर के सिद्धान्त

आजकल जन-गणना का कार्य ज़ोरों के साथ चल रहा है। राजाराम को इस काम के सिलसिले में कुछ नयी बातों का परिचय मिला। एक दिन की बात है, कुएँ पर वह नहा रहा था कि उसने सुना, त्रिलोकीनाथ तिवारी को इस बात की बड़ी चिन्ता हो गई कि उन्होंने अपनी आमदनी कुछ ज़्यादा लिखवा दी है। किसी ने मज़ाक में ही उनसे कह दिया कि अब क्या है, अब तो तिवारीजी आप पर इनकमटैक्स बँध जायगा। आमदनी भी तो आपने दो हज़ार रुपये सालाना से ऊपर लिखा दी है। फिर क्या था, शाम होने न पाई और तिवारीजी राजाराम के पास आ पहुँचे।

बिहारी बाबू भी संयोग से उस समय आये हुए थे। वे उस समय घूमने के इरादे से बाहर जाने ही वाले थे कि तिवारी जी को सामने देखकर ठहर गये। राजाराम ने उनके आते

ही कह दिया—जीजाजी इनको पटवारीराम ने दहशत में डाल दिया है। जन-गणना के सिलसिले में इन्होंने अपनी आमदनी दो हज़ार रुपये सालाना के कुछ अधिक लिखवा दी है। पटवारीराम ने कह दिया है कि अब इन पर इनकमटैक्स बँध जायगा।

बिहारी बाबू ने पूछा—आपकी आमदनी का ज़रिया क्या है ?

तिवारीजी—मेरी आमदनी का ज़रिया एक तो ज़मीदारी है। दूसरे मेरा एक लड़का कलकत्ते में नौकर है। वह १५०) माहवार वेतन पाता है।

बिहारी—इस वेतन में से वह तुमको जो कुछ भेजता है, तुमने उसको भी अपनी आमदनी में शामिल कर लिया है। है न यही बात ?

तिवारीजी—बस-बस, आपने तो सभी कुछ अपने आपही समझ लिया। विद्या की बड़ी महिमा है। तभी तो आपने मेरा सारा भेद जान लिया। आप धन्य हैं।

तिवारीजी की इस बात को सुनकर बिहारी और राजाराम दोनों-के-दोनों हँस पड़े। बिहारी ने तो तत्काल कह भी डाला कि कर का यह पहला सिद्धान्त है कि प्रत्येक कर-दाता को यह अनुभव हो कि जो कर उससे लिया जाता है, उसका भार आय के अनुपात में समस्त कर-दाताओं पर समान है। अर्थात् किसी को यह अनुभव होने का कोई कारण नहीं है कि कर उससे कुछ अधिक मात्रा में ले लिया गया है। इसी समय राजाराम बोले—परन्तु इनका तो मामला ही दूसरा है। इनके लड़के १५०) रुपये महीने वेतन पाते हैं। वह अठारह सौ रुपये सालाना

हुआ। इस रुपये को ख़र्च करने का अधिकार उनका है। वे उसे चाहे जिस तरह ख़र्च करें। मान लीजिये कि वे वक्त-ज़रूरत पर अथवा वार्षिक रूप से इनको एक रक़म दे ही जाते हों, तो वह इनकी कोई निश्चित आमदनी तो है नहीं।

बिहारी—यही तो इन्होंने ग़लती की है।

राजाराम—लेकिन जीजाजी, एक बात तो बतलाइये। जब आप यह कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति से, आय के अनुपात से, समान कर ही लिया जाता है, तब सवाल यह उठता है कि योग्यता के अनुसार कर के निश्चित करने का माप क्या है? मान लीजिये कि माखनलाल की आमदनी दो हज़ार रुपये वार्षिक है। उसके परिवार में पाँच व्यक्ति खानेवाले हैं। दूसरा व्यक्ति केदारनाथ है। उसके परिवार में व्यक्ति तो खानेवाले पाँच ही हैं, पर आमदनी उसकी चार हज़ार रुपये वार्षिक है। अब यदि दोनों परिवारवालों पर समान कर लगाया गया, अर्थात् दोनों से क्रमशः ३०) और ६०) वार्षिक कर लिया गया, तो माखन को आयकर देने में केदारनाथ की अपेक्षा अधिक कष्ट होना स्वाभाविक है। चार सहस्र रुपये वार्षिक आय होने पर केदारनाथ को ६०) वार्षिक कर देना उतना नहीं खलेगा, जितना केवल दो सहस्र रुपये वार्षिक आय होने पर माखन-लाल को ३०) वार्षिक कर देना। बात यह है कि जिसकी आय चार सहस्र रुपये है, वह अपनी विलासिता की किसी वस्तु की मांग को कम कर देगा और ६०) वार्षिक आयकर झट से दे देगा; किन्तु ३०) वार्षिक चुकाने में दो सहस्र रुपये वार्षिक आयवाले को तो

सम्भव है, अपने जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओं में से काट-छाँट करनी पड़े।

बिहारी—इसीलिए आयकर की दरें वर्द्धमान रक्खी जाती हैं। तात्पर्य्य यह कि कर-दाताओं की आमदनी अधिक होने पर कर की दरें भी ऊँची कर दी जाती हैं।

राजाराम—ऐसा क्यों किया जाता है?

बिहारी—बात यह है कि आयकी वृद्धि से योग्यता भी अधिक बढ़ती है। यहाँ तक कि जिस अनुपात में आय बढ़ती है, योग्यता उससे अधिक अनुपात में बढ़ती है।

राजाराम—तो जीजाजी, क्या वास्तव में ये दो कर ही मुख्य हैं—(१) इनकमटैक्स (२) मालगुज़ारी?

बिहारी—नहीं, ये ऐसे कर हैं, जिनका हमें ज्ञान रहता है। आजकल वार-फ़ंड के लिए प्रायः कुछ कर, अनेक अवस्थाओं में, अलग से बढ़ा लिये गये हैं, ये सब प्रत्यक्ष-कर हैं। हाउसटैक्स, वाटर-टैक्स जो म्युनिसिपल-बोर्ड को देने पड़ते हैं, वे भी प्रत्यक्ष-कर के अन्तर्गत हैं। परन्तु कुछ टैक्स ऐसे भी हैं जो प्रत्यक्ष नहीं होते और उनका ज्ञान जन-साधारण को नहीं होता।

आश्चर्य्य के साथ राजाराम ने पूछा—अच्छा, ऐसे भी कर होते हैं!

बिहारी—हाँ, ऐसे कर अप्रत्यक्ष-कर कहलाते हैं। जो वस्तुएँ दूसरे देशों से आती हैं, उन पर ड्यूटी लगती है। कुछ वस्तुएँ ऐसी भी होती हैं, जो तैयार अपने ही देश में होती हैं, पर ड्यूटी उन

पर भी लगा दी जाती है। आबकारी महकमे में नशीली वस्तुओं के ठेके प्रतियोगिता के साथ बेचे जाते हैं। इस प्रतियोगिता में ठेकेदार लोग सरकार को ठेके के नीलाम की रक़में देते हैं। इसका सारा भार अन्त में उपभोक्ताओं पर ही पड़ता है। मान लो, कोई आदमी भाँग को दूकान पर भाँग लेने गया है। अब उसे इस बात का क्या पता हो सकता है कि वह भाँग की पुड़िया ख़रीदते हुए अपने नशैल होने का भी टैक्स दे रहा है? किन्तु मादक वस्तुओं पर अगर कर लगाया जाय, तो मादक वस्तुओं के प्रचार को हतोत्साह करना एक प्रकार से उचित भी हो सकता है। परन्तु हमारे देश में तो नमक जैसी जीवनोपयोगी वस्तुओं पर भी कर लगाया जाता है!

राजाराम—लेकिन यहाँ देहात में, साधारण जनता के लोगों के साथ भी, सरकार जो समानता का व्यवहार नहीं करती, उसकी ओर भी तो आपका ध्यान जाने की आवश्यकता है।

बिहारी—वह क्या?

राजाराम—यही कि किसान लोगों से तो इतनी अधिक माल-गुज़ारी सरकार वसूल करती है कि वे बेचारे पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक ग़रीब-के-ग़रीब ही बने रहते हैं, और मज़ा करते हैं उनकी गाढ़ी कमाई पर ज़मीदार और ताल्लुक़ेदार लोग। सरकारी मालगुज़ारी अदा करने के बाद जो कुछ बचता है, उसको यही लोग खाते-उड़ाते हैं। सच पूछिये तो इन लोगों पर कर का भार हमारी अपेक्षा बहुत कम रहता है।

इस समय तिवारीजी से बोले बिना न रहा जा सका। वे कहने

लगे—और देहात के सूदख़ोर महाजनों को तो आप भूल ही रहे हैं। मेरे ख़याल से तो ये लोग इतने बने हुए होते हैं, ऐसी सादगी से (बल्कि फटी और गन्दी हालत में) ये लोग रहा करते हैं कि देखने वालों को कभी यह पता भी नहीं लग पाता, संदेह तक नहीं होता, कि इनकी आमदनी भी इतनी हो सकती है कि उस पर कर लग सके।

बिहारी—आपका कहना बिल्कुल ठीक है। हमारे यहाँ की कर-प्रणाली वास्तव में दूषित है। उसमें आमूल परिवर्तन होने की आवश्यकता है। पर जब तक आमूल परिवर्तन होने की स्थिति नहीं आती, तब तक कर-सम्बन्धी अन्य आवश्यक नियमों का पालन तो होना ही चाहिये।

राजाराम—वे नियम कौन-कौन से हैं?

बिहारी—व्यक्तियों को जो कर देना पड़ता है, उसकी मात्रा पहले से निश्चित रहनी चाहिए।

राजाराम—पर यह हो कैसे सकता है? जब लोग अपना हिसाब-किताब छिपायेंगे, जाली बही-खाते पेश करेंगे, तब गड़बड़ी होना स्वाभाविक है।

बिहारी—तुम्हारा यह कथन ठीक है; किन्तु इसके विपरीत प्रायः लोगों के साथ अन्याय होते भी देखा जाता है। अकसर इनकमटैक्स की रक़म अन्धाधुन्ध बढ़ा दी जाती है। कर की वसूलयाबी ऐसे समय और ऐसे ढङ्ग से होनी चाहिए कि कर-दाताओं को अधिक-से-अधिक सुविधा प्राप्त हो।

राजाराम—इससे आपका क्या मतलब है, यह मैं समझ नहीं सका।

बिहारी—जैसे किसान ही की बात लो। उसको लगान देने में सुविधा उस समय अधिक होती है, जब फ़सल का अनाज उसके घर में आता है।

राजाराम—ऐसा तो होता ही है।

बिहारी—किन्तु किसान को सुविधा रुपया देने के बजाय अनाज देने में अधिक हुआ करती है। लगान की वसूलयाबी के लिए राज्य की ओर से अगर ऐसा प्रबन्ध हो जाय कि रुपया देने के स्थान पर किसान अनाज दे दिया करें, तो लगान वसूल भी जल्दी हो सकता है और किसान को भी अधिक सुविधा हो सकती है।

राजाराम—हाँ, यह तो आप ठीक कहते हैं। अच्छा और ?

बिहारी—हर एक कर इस प्रकार लगाया जाना उचित है कि उसकी वसूलयाबी के ख़र्चे का भार कर-दाता पर कम-से-कम पड़े। बहुधा कर को वसूल करने के लिए ही कुछ कर्मचारी रखे जाते हैं और उनके आतिथ्य का भार भी कर-दाता पर आ पड़ता है। इंगलैंड में करों को वसूल करने का ख़र्च ३) प्रतिशत से अधिक नहीं रहता। पर हमारे देश में वह पांच प्रतिशत से भी अधिक हो जाता है।

राजाराम—ऐसा क्यों होता है ?

बिहारी—पहला कारण तो यह है कि यहाँ कर-दाताओं की सख्या अधिक है और कर की रक़म की मात्रा कम। दूसरे यहाँ के कर वसूल करनेवालों का वेतन वहाँ की अपेक्षा बहुत अधिक है।

यदि यहाँ कर वसूल करनेवाले उच्च अधिकारी पदों पर भारतवासियों की नियुक्ति हो, तो वेतन की मात्रा अनायास घट सकती है।

राजाराम—हाँ, स्थिति तो दर-असल ऐसी ही है।

बिहारी—इसी स्थल पर यह कह देना भी आवश्यक है कि कर देश के कच्चे माल पर नहीं लगाना चाहिये। लगाना चाहिए उसे बिक्री के लिए पूरी तरह तैयार माल पर।

राजाराम—अर्थात् ?

बिहारी—जैसे कपड़ा सूत से बनता है और सूत रुई से बनता है। रुई भी कपास से बनती है। ऐसी दशा में कर कपास पर न लगकर तैयारशुदा कपड़े पर लगाया जाना चाहिए। अगर कर कपास पर या रुई पर लगा दिया गया तो उसका परिणाम यह होगा कि कर और उस पर ब्याज और लाभ बीच के दलाल व्यापारियों में बढ़ता-बढ़ता सूद-दर-सूद होकर—उपभोक्ताओं पर वह लगभग दूना हो जायगा। अर्थात् अगर किसी कपास के व्यापारी से वह १०००) वसूल किया गया, तो कपड़े के अन्तिम ग्राहकों को माल के अनुपात से उसे २०००) तक देना पड़ेगा।

पर यहाँ यह जान लेना भी आवश्यकता है कि यह नीति देश के भीतरी व्यापार के लिए जितनी हानिकारक है, उतनी ही देश के बाहर जानेवाले कच्चे माल के लिए लाभदायक। बात यह है कि निर्यात के कच्चे माल पर जो कर लगाया जाता है उससे देश के आन्तरिक उद्योग-धन्धों को बहुत प्रोत्साहन मिलता है। उस दशा में इस प्रकार का कर तो लगना ही चाहिए।

राजाराम—लेकिन आपने अभी तक यह नहीं बतलाया कि करों की संख्या कम होनी चाहिये या अधिक और यह कि उनकी दरें कम-से-कम हों या अधिक। क्या इस विषय में कोई स्पष्ट नीति निर्धारित हुई ?

बिहारी—इस विषय में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मिस्टर 'आडमस्मिथ का कथन है कि करों की संख्या जब अधिक होगी, तब उनका भार करदाताओं को कम अखरेगा। अतएव अधिक आय के लिए करों की संख्या बढ़ाना उचित ही है। किन्तु उस दशा में हमें यह न भूल जाना चाहिए कि छोटे-छोटे करों की वसूलयाबी में ख़र्च अधिक पड़ता है और समय और परिश्रम भी अधिक लगता है। अतएव उद्देश्य यह होना चाहिए कि करों की संख्या न इतनी अधिक हो कि उनके वसूल करने में असुविधा हो, न उसका परिमाण इतना अधिक हो कि वह करदाता के लिए असह्य हो उठे। कर वही श्रेष्ठ हैं जो देश की सम्पत्ति की वृद्धि में सहायक होने की दृष्टि से बढ़ते और उसकी आय घटने की स्थिति में घट जाते हैं। अर्थात् देश-काल की परिस्थिति के अनुसार वे घटते-बढ़ते हुए सदा लोचदार रहते हैं।

राजाराम कुछ कहने ही जा रहे थे कि तिवारीजी बोल उठे—तो बाबू साहब, अब मैं क्या करूँ। मुझसे ग़लती तो हो ही गई।

पर बिहारी को बोलने का अवसर न देकर राजाराम ने ही उनका समाधान करते हुए कह दिया कि उस आदमी से मिलकर मैं इसका सुधार करवा दूँगा, आप चिन्ता न करें।

किन्तु बिहारी ने कहा—पर आपको मार्ग वही पकड़ना चाहिए जो

सत्य हो। अगर आपका कुटुम्ब सम्मिलित है और लड़के की आय उसमें शामिल है, तो थोड़ी सी बचत के लिए आपको असत्य का मार्ग अवलम्बन करना ठीक नहीं है। क्योंकि जिस कर से हमारी मुक्ति सम्भव न हो, जिससे हम अपना अनुचित बचाव न कर सकें, जिसके देने में हमारी मान-प्रतिष्ठा की वृद्धि हो और जिसे हम सहर्ष दे सकें, जो देश की जनता के सामूहिक लाभ का अंश हो, वह उत्तम कर कहलाता है।

तिवारीजी पर बिहारी की बात का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे उठ कर खड़े हो गये और बोले—अच्छी बात है। अगर अब मुझ पर इनकमटैक्स लग भी जायगा, तो मैं उससे भयभीत नहीं होऊँगा। मैं उसे हर्ष के साथ अदा करूँगा। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आपको धन्यवाद है कि आपने मेरा भ्रम दूर कर दिया।

इस प्रकार तिवारी इतना कहकर चले गये। अभी वह मकान से थोड़ी दूर चलकर सड़क पर ही गये होंगे कि राजाराम ने कहा—आप भी ख़ूब हैं। बेचारे को ऐसी पट्टी पढ़ाई कि लेने के देने पड़ गये।

बिहारी बाबू हँसने लगे। बोले—सच्ची बात कहनी ही पड़ती है। अर्थशास्त्र में व्यक्ति के लाभ के स्थान पर देखना होता है, वास्तव में, समाज और राज्य का लाभ।



नवाँ अध्याय

आय-कर

रात के आठ बज चुके हैं। न अभी तक मुनियाँ ही सोयी है, न बिल्लू। दोनों एक दूसरे को खिझा रहे हैं। मुनियाँ कहती है—बिल्लू बिलाव को कहते हैं, जो चूहे चट करता रहता है। बिल्लू का कहना है कि मुनियाँ मुनमुन को कहते हैं जो बकरी की बच्ची कहलाती है। बिलाव उसे चट कर जाता है।

इसी समय बिहारी बाबू बोल उठे—.खुश रहो। और कहो, सब लोग मज़े में तो हैं। आज जान पड़ता है गाड़ी ठीक टाइम से आ गयी थी।

अब तो मुनियाँ और बिल्लू दोनों उठ बैठे। दोनों को मालूम जो हो गया था कि मोहन दद्दा आये हैं। मुनियाँ बोली—दद्दा, हमारे लिए आम नहीं ले आये। बिल्लू ने कहा—और हमारे लिए मिसिर जी की दूकान का पेड़ा दद्दा?

मोहन ने उत्तर दिया—आम तो ले ही आये हैं मुनियाँ, साथ ही

146

पेड़ा भी ले आये हैं। पर चाचा, अबकी बार गाँव में एक बड़ी ख़ास बात हो गयी।

"वह क्या ?" उत्सुकता के साथ बिहारी ने पूछा।

मोहन बोला—लालामिसिर बुरी तरह पिट गये।

"क्या मतलब ?—आश्चर्य्य से बिहारी ने पूछा।

मोहन—पिट गये का मतलब यह नहीं कि उनको किसी ने मारा। बल्कि यह कि इस बार उनपर इनकमटैक्स बँध गया।

बिहारी ने कहा—ठीक तो हुआ। दुकानें भी तो उन्होंने तीन कर रक्खी हैं। अभी तक किराने और मिठाई की ही थीं। अब कपड़े की भी कर ली है। ऐसी दशा में इनकमटैक्स से वे बच ही कैसे सकते थे। अभी तक जो बचे रहे, यही बड़ी बात थी। ऐसे लोगों पर जब इनकमटैक्स बँध जाता है, तब मुझे तो बड़ी प्रसन्नता होती है।

मोहन—परन्तु चाचा, यह बात तो बड़ी अनुचित है कि किसी पर कर आवश्यकता से अधिक लाद दिया जाय, और किसी पर कम। ठाकुर विजयप्रतापसिंह पर जो टैक्स लगता है, आपको तो मालूम ही है कि आय को देखते हुए वह कितना कम है ! और मिसिरजी को ऐसी कोई ज़्यादा आमदनी तो है नहीं।

बिहारी—अच्छा, इस विषय पर अभी फिर बात करूँगा। अरे कोई है। खाना भिजवाना। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में ही था। मैंने सोचा, तुम आ जाओ, तो तुम्हारे साथ ही खाऊँ।

मोहन भीतर चला गया पीछे-पीछे मुनियाँ और बिल्लू भी चल दिये।

थोड़ी देर में जब चचा-भतीजे खाना खाने के लिए बैठ गये,

तो बिहारी ने फिर यही प्रश्न उठा लिया। उन्होंने कहा—हाँ, तुमको यह शिकायत थी कि आयकर का भार किसी पर आवश्यकता से अधिक और किसी पर कम होना सर्वथा अनुचित है। किन्तु तुमने यह नहीं सोचा कि जब कर-दाता की आय निश्चित नहीं है, वह बराबर घटती-बढ़ती है, तब उन लोगों को अगर यह शिकायत हो, तो इसमें क्या आश्चर्य है।

मोहन—किन्तु जिनकी आमदनी अधिक नहीं है, उन पर कर लगाना तो किसी प्रकार उचित नहीं ठहराया जा सकता।

बिहारी—भारतवर्ष में २०००) या उससे अधिक की आमदनी पर आय-कर लगाया जाता है। मिसिरजी की आमदनी इससे अधिक ही है, इसलिये उन पर यह कर लगाया गया है। अब रह गयी बात यह कि तुम इसमें असमानता देखते हो। सो, अर्थशास्त्र में इसके लिए एक ही समाधान बतलाया गया है। वह यह कि आयकर वर्द्धमान होना चाहिए। अर्थात् आय जैसे-जैसे अधिकाधिक बढ़ती जाय, वैसे-ही-वैसे कर की दर भी बढ़ती जाय। परन्तु वह किस ढंग से वर्द्धमान हो कि असमानता का प्रश्न ही न उठ पाये और सर्वत्र समानता का सिद्धान्त सफल हो जाय, यह तो अभी तक निश्चित रूप से कहा नहीं जा सका। समाजवादी तो इसी पक्ष में हैं कि आयकर इतनी तेज़ी से वर्द्धमान होना चाहिये कि भारी आमदनी का अधिकांश भाग ही ले लिया जाय। इसीलिए आमदनी की श्रेणियों पर आयकर की भिन्न-भिन्न दरें रखी गयी हैं। अतः श्रेणियों के अनुसार दरें बढ़ती जाती हैं। श्रेणी के अन्दर वह वर्द्धमान नहीं हो सकती है, इसी

का यह परिणाम है कि श्रेणी के अन्दर कर-भार समान नहीं रहता। प्राय: ऐसा देखने में आता है कि श्रेणी के अन्दर अधिक आयवालों पर कर-भार कम रहता है और कम आयवाले कर-दाता पर अधिक।

अब मोहन ने कहा—तब आवश्यकता इस बात की हो जाती है कि श्रेणियां अधिक बनाई जायँ, ताकि बीच की आमदनी का अन्तर कम हो जाय।

बिहारी—हां, यह तुमने ठीक सोचा। परन्तु इतना ही यथेष्ट नहीं है। हमारे यहां एक तो खेती की आमदनी पर कर ही नहीं लगाया जाता। दूसरे यह संयुक्त-कुटुम्ब-प्रणाली और चमड़ी उधेड़वा लेती है। जिन जमींदारों-ताल्लुक़ेदारों के यहाँ सैकड़ों बीघे की खेती होती है, उनकी आमदनी क्या इतनी नहीं होती कि उस पर आय-कर लगाया जाय। किन्तु यहां सरकार ने खेती की आय पर कर की छूट दे रक्खी है।

मोहन—किन्तु चाचा यह तो एक तरह से अच्छा ही है। लोगों को खेती से अपनी आय बढ़ाने का अवसर तो रहता है। लगान देनेवाले कृषक तो कभी पनप नहीं पाते। कभी उन्हें ऐसा अवसर ही नहीं मिलता कि वे इतनी अधिक आय कर सकें। अब रह गये ज़मीन्दार। उन्हीं को थोड़ा-सा ऐसा मौक़ा मिल पाता है कि वे खेती से थोड़ा ख़ुशहाल हो सकें। पर आप तो उनपर भी टैक्स लगाने की बात कह रहे हैं।

बिहारी—परन्तु उनपर टैक्स लगाने का जो रूप अर्थशास्त्र में है, उसपर अभी तुम्हारी दृष्टि नहीं गयी।

मोहन—वह रूप कौन-सा है चाचा ?

बिहारी—जो लोग ख़ुद खेती करते हैं, उनपर आयकर की मात्रा कम हो, किन्तु जो लोग बिना मेहनत के खेती से लाभ उठाते हैं, उनपर आय-कर की मात्रा अधिक होनी चाहिये।

आश्चर्य्य के साथ मोहन ने पूछा—चाचा, बिना मेहनत किये लाभ उठानेवालों से आपका क्या अभिप्राय है ?

बिहारी—क्यों, अधिक लगान, सूद और मुनाफ़ा लेनेवाले लोग क्या इस वर्ग में नहीं हैं ?

मोहन—क्यों नहीं हैं ! सच पूछिये, तो यही लोग किसानों के सर्व-प्रथम शोषक हैं। इन्हीं लोगों के द्वारा बेचारे मज़दूर-किसान खाने को पेट-भर अन्न नहीं पाते—तन ढकने भर के कपड़े नहीं। इन्हीं लोगों के अत्याचार, ज़ोर-ज़ुल्म और अपहरण के कारण वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी के लिए मरभुखे भिखमंगे बने रहने को विवश होते हैं !

बिहारी—इसीलिए ऐसे वर्ग पर कर लगाना चाहिये। आय-कर की असमानता का दूसरा कारण संयुक्त-कुटुम्ब-प्रणाली है। संयुक्त कुटुम्ब होने पर एक पीढ़ी बाद ही कुटुम्ब के सदस्यों की संख्या बढ़ जाती है। कुटुम्ब का मालिक एक माना जाता है और आयकर उस पर लग जाता है। अगर जायदाद सभी कुटुम्बियों में बँटी हो, तो सब की आय बटकर कम रह जाय और उस दशा में आयकर का दायी कोई भी न रहे। परन्तु संयुक्त-कुटुम्ब-प्रणाली होने से आयकर की मात्रा में घटी नहीं हो पाती, उधर उसका विभाजन होने पर उसके बड़े भाग (घर) पर भी उतना ही भार पड़ जाता है,

जितना छोटे पर। मिसिरजी की बात ले देखो। माना कि उनके कई दूकानें हैं। पर इससे क्या, उन दूकानों पर आदमी तो अलग-अलग बैठते हैं। अगर वे सब अलग-अलग रहने लगें, तो सम्मिलित आय का अपना भाग ही वे पा सकें और उस दशा में आयकर के दायी भी न रहें।

बिल्लू और मुनियाँ पेड़ा और आम चखकर सो गये हैं। इन लोगों का भोजन भी अब समाप्ति पर आ रहा है। पानी पीने के बाद मोहन ने कहा—तो आयकर की दृष्टि से संयुक्त-कुटुम्ब-प्रणाली को आप अच्छा नहीं समझते।

बिहारी ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—मेरे समझने और न समझने की इसमें क्या बात है? अर्थशास्त्र के अन्तर्गत राजस्व विभाग की ओर दृष्टि रखकर मुझे अपना मन्तव्य इस तरह प्रकट करना पड़ता है।

मोहन—पर मुझे तो इस सारे गोरखधन्धे में केवल एक बात महत्व की जान पड़ी और वह यह कि सारे करों की मात्रा उत्तरोत्तर वर्द्धमान होनी चाहिए।

बिहारी—आयकर के सम्बन्ध में प्रायः कर-दाताओं में जो असन्तोष रहता है उसका मूल कारण यही है कि आय की विभिन्न श्रेणियों के हिसाब से ऐसी दरें निश्चित नहीं हैं, जिनसे बीच की आमदनी का अन्तर नगण्य हो सके। दो हज़ार की आमदनी के बाद हमारे यहाँ फिर पाँच हज़ार से अधिक की आमदनी पर बढ़ी हुई दर से टैक्स लगता है। ५० हज़ार की आमदनी से अधिक आमदनी प्राप्त

होने पर आयकर के अतिरिक्त एक और कर लगाया जाता है जिसे सुपर-टैक्स या 'विशिष्ट आयकर' कहते हैं ।

उस दिन का यह वार्तालाप तो यहीं समाप्त हो गया । किन्तु सप्ताह-भर बाद मोहन के पास जो पत्र गाँव से आया, उससे कई नयी बातें प्रकट हुईं । एक तो यह कि लालामिसिर ने अपनी दूकानों पर आदमी कम कर दिये, दूसरे जो आदमी रक्खे भी, वे कम वेतन पानेवाले ।

तब मोहन ने बिहारी से कहा—उस दिन आप से जो बातचीत हुई थी, उसका निष्कर्ष आज प्रत्यक्ष रूप से सामने आ गया ।

बिहारी ने पूछा—क्या ?

मोहन ने पत्र उनके सामने रख दिया ।

बिहारी ने भी पत्र पढ़कर कहा—यह तो होना ही था ।



दसवाँ अध्याय

मालगुज़ारी

जब उस दिन मोहन ज़रा देर से घर लौटा, तो बिहारी ने पूछा—आज बड़ी देर कर दी। कहाँ चले गये थे? अभी-अभी मैं खाना खाकर लेटा हूँ। मुनियाँ और बिल्लू दोनों सो गये हैं। तुम्हारी चाची भी सम्भवतः सो गयी हैं।

मोहन ने बतलाया—कुछ न पूछिये चाचाजी। ज़रा गंगाजी के किनारे घूमता हुआ चला गया था। साथ में बीरेश्वर भी था। आपको मालूम ही है कि घाट के किनारे कुछ ऐसे लोग रहते हैं, जो केवल भीख माँगकर अपना पेट पालते हैं।

बिहारी ने कुछ उत्सुकता से कहा—अच्छा, तो तुमने उनमें क्या कोई ख़ास बात देखी?

संध्या होते ही जब मैं घाट पर से इधर लौटने लगा, तो बीरेश्वर के सामने पड़ गया संकटा।

आश्चर्य्य से बिहारी ने पूछा—संकटा कौन ?

मोहन—आप न जानते होंगे। गाँव में यह एक सीधा-सच्चा भला किसान था। दो भाई थे। बेचारे दिन-रात मेहनत करते और खाने भर के लिए काफ़ी अच्छी खेती कर लेते थे। घर में बैलों की जोड़ी के अलावह गाय भी रखते थे। छोटा भाई द्वारका जब बाइस वर्ष का हुआ, तो एक दिन लू लग जाने के कारण चल बसा! बस उसका मरना था कि संकटा की बँधी गृहस्थी टूट गयी। कई साल तक लगातार खेती का सिलसिला बिगड़ता ही चला गया। अन्तिम साल दुर्भिक्ष पड़ गया। गाँव में थोड़ी-बहुत छूट हुई। परन्तु उसका लाभ कुछ थोड़े ही किसानों को मिल सका। आधे से ज़्यादह किसान बुरी तरह पिस गये। दुर्भाग्य के इस प्रकोप का भाजन संकटा भी हो गया। पर इस बात का ज्ञान मुझको आज हुआ कि संकटा इस दुर्गति को प्राप्त हुआ है। गाँव के लोगों का विश्वास तो यह था कि संकटा भागा नहीं है। अधिक सम्भव यही है कि वह मर गया है। जीवित रहता, तो कभी-न-कभी तो गाँव में अवश्य आता। मैंने जब गाँव के लोगों का, उसके सम्बन्ध में ऐसा विश्वास, उससे प्रकट किया, तो वह बेचारा रो पड़ा। बोला—अब इस दशा में मैं गाँव में क्या मुँह दिखलाऊँ!

मोहन इतना कहकर कपड़े उतारने को अन्दर चला गया। खाना खाकर जब वह लौटा, तो उसने देखा कि चाचा सोये नहीं हैं। वह अपनी चारपाई पर बैठा ही था कि बिहारी ने कहा—तुम्हें मालूम होना चाहिये मोहन कि संकटा इस क्षेत्र में अकेला नहीं है।

हज़ारों नहीं लाखों संकटाप्रसाद हमारे इस अभागे देश में इसी तरह का हीन और आत्म-ग्लानि से भरा विवश जीवन व्यतीत करते हैं। यह समस्या एक संकटा की है भी नहीं। यह तो सम्पूर्ण किसान-समुदाय की है।

मोहन बोल उठा—तो आप शायद यही कहना चाहते हैं कि जब तक देश स्वराज्य नहीं प्राप्त कर लेता, तब तक यह स्थिति बदल नहीं सकती।

बिहारी—सोच तो तुम्हारा बिल्कुल ठीक है। किन्तु यह विषय सोलह आना राजनीतिक ही नहीं है। इसका एक अर्थशास्त्रीय पहलू भी है।

मोहन—अर्थात् ?

बिहारी—आर्थिक-लगान के सम्बन्ध में तुम यह जान ही चुके हो कि लगान की दर वास्तव में खेतों की उपज के अनुसार निश्चित की जानी चाहिये। इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्र के इस दृष्टिकोण से भी तुम परिचित हो कि किसान जिस भूमि में खेती करता है, उसका भोक्ता भी वही होता है। जब उसकी उपज बढ़े, अर्थात् उसकी आय वर्द्धमान हो, तभी उस पर लगान बँधना चाहिये। लगान की दर भी तभी बढ़नी चाहिये, जब किसान का लाभ वर्द्धमान हो।

मोहन—तब तो हम आगे ही इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि जिन किसानों के खेतों की उपज कम हो, या जिन्हें घाटा हो रहा हो, उनसे लगान नहीं लेना चाहिए।

बिहारी—निस्सन्देह।

मोहन— परन्तु ....।

बिहारी—इस सिद्धान्त के अनुसार चलने पर एक बहुत बड़ी कठिनाई हमारे देश में उपस्थित हो जाती है। बात यह है कि यहाँ पर मालगुज़ारी की प्रथा मुख्यतया दो प्रकार की है। एक तो रैयतवारी, दूसरी ज़मीदारी। रैयतवारी में भूमि की मालगुज़ारी देने का सम्बन्ध प्रजा सीधे सरकार से रखती है। बम्बई, सिंध, मदरास, आसाम, बिहार तथा युक्तप्रांत के थोड़े से भाग में इसी प्रकार की व्यवस्था है। ज़मींदारी का प्रबन्ध दो रूपों में है। बंगाल में पूर्ण रूप से, बिहार के $\frac{५}{६}$ भाग में, आसाम के आठवें और संयुक्तप्रान्त के दसवें भाग में ज़मीदारी का स्थायी प्रबन्ध है। इस प्रबन्ध में भूमि के अधिकारी तीन होते हैं:—(१) किसान, जो ज़मीन जोतते हैं। (२) ज़मीदार, जो उस भूमि का लगान वसूल करके उसका एक निश्चित अंश सरकार को देते हैं। (३) सरकार, जो ज़मीदारों से मालगुज़ारी लेती है। संयुक्तप्रान्त और मध्यप्रान्त में ज़मीदारी का अस्थायी प्रबन्ध है। संयुक्तप्रान्त में ३० वर्ष में और मध्यप्रान्त में २० वर्षों के अनन्तर मालगुज़ारी निश्चित की जाती है। इसी समय यह निश्चित किया जाता है कि कितना लगान किसान ज़मीदार को दे और कितनी मालगुज़ारी ज़मीदार सरकार को।

मोहन ने इस पर आपत्ति उठाई कि मालगुज़ारी वसूल करने का जो सिद्धान्त आपने अभी-अभी बतलाया था, उसका पालन तो इस प्रकार नहीं होता।

बिहारी ने कहा—हाँ, भारत में चूँकि सरकार विदेशी है, इसलिए

अर्थशास्त्र के इस सिद्धान्त की यहाँ पर अवहेलना की जाती है। इसका मूल कारण यह है कि भूमि के जो असली उपभोक्ता किसान हैं, उनपर उपज की दर के अनुसार लगान नहीं लगाया जाता। लगान तो उन पर लगता है भूमि के क्षेत्रफल के हिसाब से। उपज हो, चाहे न हो। लगान उन्हें देना ही पड़ता है। पेट-भर अन्न उन्हें मिलता है या नहीं, तन ढकने-भर को वे कपड़े पाते हैं या नहीं, रहने के लिए साफ़-मज़बूत और स्वास्थ्यकर मकान उनके पास हैं या नहीं, उनके बच्चे खाने-पहनने और उपयोगी शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाओं से मुक्त हैं अथवा रहित, जनता के भविष्य के वे आशा-केन्द्र पनप रहे हैं, या मिट रहे हैं, सरकार इससे कोई सम्बन्ध नहीं रखती। सरकार को तो मालगुज़ारी चाहिये। चाहे वह रैयत से सीधे रूप में वसूल हो, चाहे ज़मादारों के द्वारा—उनके स्वार्थों की पूर्ति होनी ही चाहिये। इसका परिणाम यह हुआ है कि धीरे-धीरे हमारे देश की ८० प्रतिशत कृषक जनता मालगुज़ारी देने के सर्वथा अयोग्य और असमर्थ हो गयी है।

मोहन बोल उठा—उफ़! अस्सी फ़ी-सदी।

बिहारी—हाँ, अस्सी फ़ी-सदी। तुमको यह सुनकर आश्चर्य्य हो रहा है!

मोहन बोल उठा—परन्तु चाचा अगर इस प्रकार आपके कथनानुसार अस्सी फ़ी-सदी किसान मालगुज़ारी से मुक्त कर दिये जायँ, तो सरकार की शासन-व्यवस्था की क्या स्थिति होगी?

बिहारी—स्थिति ? तुम्हें मालूम होना चाहिये कि प्रान्तीय सरकारों की आय का प्रमुख साधन मालगुज़ारी है। प्रायः उनकी आय का लगभग आधा भाग इसी से प्राप्त होता है।

मोहन—परन्तु जब अर्थशास्त्र के आदर्श के अनुसार अस्सी फ़ी-सदी भारतीय किसानों से लगान वसूल नहीं किया जा सकता, तब और उपाय क्या है ?

बिहारी—उपाय ? उपाय तो बहुत से हैं, पर स्वराज्य के बिना उनका सफलता-पूर्वक निर्वाह होना कठिन है। यहाँ सर्व प्रथम प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या ग़रीब किसानों से लगान वसूल करना ही बन्द कर दिया जाय ? मुझ से पूछा जाय, तो मैं कहूँगा कि किसानों के साथ ही उन टुटपुंजिया ज़मीदारों से मालगुज़ारी लेना भी बन्दकर दिया जाय, जिनकी आय यथेष्ट नहीं होती। जिन खेतों की उपज यथेष्ट नहीं होती, उनसे लगान लेना वास्तव में अनुचित है।

मोहन—परन्तु तब सरकार की आय में जो कमी होगी, उसकी पूर्ति कैसे होगी ?

बिहारी—पूर्ति की जाय उस शेष रहे वर्ग से, जो मालगुज़ारी देने में पूर्ण समर्थ हैं। भले ही उसकी संख्या २० प्रतिशत हो। उनकी मालगुज़ारी की दर उत्तरोत्तर वर्द्धमान होनी चाहिए। अर्थात् ज्यों-ज्यों खेती से आमदनी की आय अधिक होती जाय, त्यों-त्यों माल-गुज़ारी की दर भी बढ़ती जानी चाहिए।

मोहन—अच्छा चाचा, अर्थशास्त्र के अनुसार मालगुज़ारी की इस

वर्द्धमान दर के सम्बन्ध में भी क्या कोई मन्तव्य स्थिर किया जा सकता है ?

बिहारी—क्यों नहीं ? दो हज़ार रुपये वार्षिक की आमदनी पर मालगुज़ारी क़तई नहीं लेनी चाहिए। दो हज़ार से तीन हज़ार तक की आमदनी पर दस फ़ी-सदी, तीन हज़ार से पाँच हज़ार तक की आमदनी पर पन्द्रह फ़ी-सदी, पांच हज़ार से दस हज़ार रुपये की आमदनी पर बीस फ़ी-सदी और फिर दस हज़ार रुपये से अधिक की आमदनी पर पचीस प्रतिशत मालगुज़ारी लेना उचित है। इसके साथ-साथ यह भी स्थिर हो जाना आवश्यक है कि किसानों और छोटे-मोटे ज़मीदारों की ज़मीन वास्तव में उन्हीं की सम्पत्ति मान ली जाय और उनसे प्राप्त होनेवाले लगान में भी यथेष्ट कमी कर दी जाय।

मोहन—तो दूसरे शब्दों में आप यह कहना चाहते हैं कि माल-गुज़ारी भी प्रकारान्तर से आय-कर मान ली जाय।

बिहारी—तुमने बिलकुल ठीक निष्कर्ष निकाला है। इस दशा में मालगुज़ारी के लिए अलग से न्याय-व्यवस्था की कोई आवश्यकता ही न रह जायेगी।

मोहन—अच्छा चाचा, सरकार ने मालगुज़ारी की आधुनिक अधिकता के सम्बन्ध में कभी कोई विचार नहीं किया ?

बिहारी—एक बार सन् १९२४ ई० में एक जांच-समिति बैठाली गयी थी। उसने यह व्यवस्था दी थी कि खेती के लागत-ख़र्च में

किसान और उनके उन कुटुम्बियों की मज़दूरी सम्मिलित ही नहीं की जाती, जो उनके साथ-साथ प्रायः कार्य किया करते हैं। यदि खेती के लागत-ख़र्च का हिसाब ठीक-ठीक लगाया जाय, तो बहुत से खेत ऐसे निकलेंगे जिनकी आमदनी लागत-ख़र्च से कम होगी। इस प्रकार के खेत जोतनेवालों से तो मालगुज़ारी या लगान लिया जाना किसी भी दशा में उचित नहीं कहा जा सकता। किन्तु जब तक आमूल परिवर्तन न हो, तब तक ऐसा करना सम्भव कहाँ हो सकता है? यही कहा जा सकता है कि जब तक आमूल परिवर्तन न हो, तब तक थोड़े-बहुत सुधार अवश्य किये जायँ। दुर्भिक्ष अथवा आकस्मिक संकट-काल में, विशेष रूप से उन प्रान्तों और ज़िलों के भू-भागों में, जो वास्तव में कष्टपीड़ित हों, यथेष्ट छूट की जाय और सभी सम्भव उपायों को काम लाकर देश के मूलाधार इस कृषक-वर्ग की रक्षा, उन्नति और श्रीवृद्धि को यथेष्ट उत्तेजन दिया जाय।

यह वार्तालाप जब यहीं समाप्त हो गया तो थोड़ी देर के मौन के बाद मोहन फिर बोल उठा—चाचाजी, संकटा की दुर्दशा देखकर और उसकी करुण-कहानी सुनकर मैं तो स्तब्ध रह गया। वीरेश्वर और हम दोनों रास्ते-भर इसी समस्या पर विचार करते रहे। अगर संकटा मालगुज़ारी की प्रचलित पद्धति का शिकार न होता, तो उसकी सामाजिक स्थिति आज कितनी अच्छी होती! क्या उसके बाल-बच्चे आज मेरी तरह अर्थशास्त्र के इन प्रश्नों पर विचार करने योग्य न होते!—अपनी इस वृद्धावस्था में जिसे विश्राम, शान्ति, परोपकार

और धर्म-संचय में लीन रहना चाहिये था, वही आज दर-दर का भिक्षुक बना हुआ कैसा हीन जीवन व्यतीत करता है !

बिहारी ने पूछा—क्या उसके कोई बाल-बच्चा था ?

मोहन ने उत्तर दिया—मैंने जब पूछा, तो वह रो पड़ा। बोला—उनकी सुधि मत दिलवाओ भैया। मालूम नहीं उनका क्या हाल हो ! हाय ! मैं उन्हें मँझधार में छोड़कर चल दिया था।



ग्यारहवाँ अध्याय

मृत्युकर

घर में प्रवेश करते ही मोहन ने देखा, चाचा नहीं हैं। दफ़्तर से ही नहीं लौटे, अथवा अन्यत्र गये हैं, यह जानने के लिए उसने चाची से पूछा, तो मालूम हुआ कि दफ़्तर से तो लौट आये थे। पर फिर लाला भूपनारायण के यहाँ चले गये हैं।

लालाजी इस नगर के मालदार व्यवसायी पुरुषों में शीर्ष स्थान रखते हैं। इधर दो सप्ताह से वे बीमार थे। इस समय जब मालूम हुआ कि उनका देहान्त हो गया है, तो उनके कुटुम्बियों से समवेदना प्रकट करने के लिए उनके घर जाना आवश्यक हो गया।

रात को जब नौ बजे के लगभग बिहारी लौटे तो ऊपर आते ही मोहन ने पूछा—बड़ी देर कर दी चाचा।

बिहारी ने उत्तर दिया—देर क्या कर दी, देर करनी ही पड़ी। ज़्यादा नहीं तो पाँच सौ आदमी तो रहा होगा। अपने नगर का एक

ही आदमी था। सत्तर वर्ष की आयु थी और परिवार में छोटे-बड़े सत्तावन प्राणियों को छोड़ गया है। तेरह तो पंती और पंतिनी हैं। दो नाती पी० सी० एस० हैं। एक बैरिस्टर है। लड़का नगर का नामी डाक्टर है, जिसकी प्रैक्टिस हज़ार-बारह सौ रुपये महीने की है। नगर में कोई तेरह कोठियाँ और तीस बँगले हैं। कानपुर में दो मिलें चलती हैं। यहाँ मकान पर छोटी-बड़ी सात मोटरें होंगी। सोचो तो सही, कितना भाग्यशाली आदमी था!

मोहन ने पूछा—सम्पत्ति कितनी छोड़ गये लाला?

बिहारी ने जवाब दिया—ठीक कह सकना तो कठिन है। किन्तु कोट्यिाधीश तो थे ही।

मोहन ने कहा—ये सब बातें सुनकर, चाचा जी, मेरे मन में कुछ ऐसे भाव उत्पन्न होते हैं, जिन्हें सुनकर आप आश्चर्य्य करेंगे।

बिहारी कपड़े उतारकर चारपाई पर आ विराजे, फिर तकिया सिरहाने रखकर, आराम के साथ लेटते हुए बोले—अब कह ही डालो मोहन, जो कुछ भी तुम्हारे मन में आता हो। मुझे मालूम भी तो हो कि तुम्हारा विचार-प्रवाह किस ओर है।

मोहन ने कहा—बात यह है चाचा कि जब मैं अपने देश की ग़रीबी देखता हूँ, तो अमीरों की अमीरी मुझे सहन नहीं होती। इतनी अधिक आर्थिक असमानता जो समाज सहन करता है, उसमें न तो बौद्धिक तत्वों का विकास होना सम्भव है, न उसमें जीवन की सत्ता ही मैं मानता हूँ। मेरा वश चले, तो मैं तो ऐसे अवसरों पर इन लोगों की सारी सम्पत्ति छीन लूँ और ऐसे कामों में लगाने की

व्यवस्था करूँ, जिनसे ग़रीबों का पेट चले और देश की भावी सन्तति के विकास का पथ प्रशस्त हो।

बिहारी बोल उठे—तुमने उचित ही सोचा है मोहन। तुम्हारे इस विचार की मैं प्रशंसा करता हूँ। नयी पीढ़ी से मैं इस बात की आशा भी रखता हूँ। परन्तु तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि ऐसे अवसरों पर इन सम्पत्तिशालियों से रुपया छीनने के लिए समाज को किसी अवैध उपाय का आश्रय ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अर्थशास्त्र के राजस्व-विभाग के अन्तर्गत आय-कर के सिल-सिले में एक कर केवल इसी अवसर के लिए निर्धारित किया गया है और उसे मृत्युकर कहते हैं। जब किसी व्यक्ति की जायदाद, उसके देहान्त हो जाने पर, उसके उत्तराधिकारी को मिलती है, तब उसपर डेथ-ड्यूटी या सक्सेशन ड्यूटी अर्थात् मृत्यु-कर लिया जाता है।

मोहन ने आश्चर्य्य के साथ कहा—अच्छा, यह आपने खूब बतलाया!

बिहारी—हाँ, एक तो सिद्धान्त रूप से यह उत्तम कर है, दूसरे जिनसे लिया जाता है, उनको वैसा अखरता भी नहीं है। मान लो किसी व्यक्ति को उत्तराधिकार में दस हज़ार रुपये मिल रहे हैं। ऐसी दशा में यदि उसे नौ हज़ार रुपये ही मिले, तो एक हज़ार रुपयों का इस कर में चला जाना इतनी बड़ी बात नहीं है, जिसे वह सहन न कर सके। और सभ्य देशों में आर्थिक असमानता को दूर करने का यह एक उत्तम साधन माना जाता है।

मोहन—परन्तु हमारे देश में तो अभी तक यह प्रचलित हुआ नहीं।

बिहारी—बात यह है कि हमारे देश का क़ानून इसमें बाधक है। यहाँ तो लड़का पैदा भी नहीं होने पाता, गर्भ में ही उसका अस्तित्व मानकर जायदाद में उसका भाग स्थापित हो जाता है। फिर यहाँ जायदाद किसी एक व्यक्ति की न होकर पूरे कुटुम्ब की होती है। किसी एक व्यक्ति का मरना-न-मरना जायदाद पर कोई प्रभाव नहीं डालता।

मोहन—परन्तु चाचा, कर तो कर के रूप में ही लिया जा सकता है। सारी अथवा अधिकांश सम्पत्ति इसमें कैसे हड़प ली जा सकती है?

बिहारी—इस कर की दरें भी तो वर्द्धमान होती हैं। मान लो कोई आदमी बीस हज़ार रुपया अथवा इतने की सम्पत्ति छोड़ मरा है। यह रक़म कुछ बहुत अधिक नहीं है। अगर इस पर यह कर दस प्रति सैकड़ा होगा, तो पचास हज़ार पर वह बीस प्रति सैकड़ा हो सकता है। इसी प्रकार एक लाख पर पचीस प्रति सैकड़ा और उसके आगे बढ़ता हुआ पचास प्रति सैकड़ा और करोड़ों पर पहुँचने पर वह पचहत्तर प्रति सैकड़ा तक जा सकता है।

मोहन—परन्तु इस प्रकार भी बहुत अधिक रुपया इस कर में क्या आता होगा!

बिहारी—क्यों नहीं आता? एक ओर तो यह कर पूरी रक़म पर लगता है, फिर जिन उत्तराधिकारियों के पास जायदाद पहुँचती है, उनसे अलग लिया जाता है। इतना ही नहीं, उन उत्तराधिकारियों से भी इस कर के लेने के दो प्रकार हैं। निकट के नातेवालों से

इस कर की दर अपेक्षाकृत कम रक्खी जाती है, तदनन्तर नाते जैसे-जैसे दूर के होते जाते हैं, वैसे-वैसे इस कर की दरें भी बढ़ती जाती है। उदाहरणवत् सगे लड़के को यदि बीस हज़ार रुपये मिल रहे हैं, तो उस पर इस रक़म के लिए यदि इस कर की दर दस प्रति सैकड़े होगी तो लड़की के लड़के को उसकी रक़म पर पन्द्रह रुपये प्रति सैकड़े होगी। इसी प्रकार यदि कोई आदमी किसी ऐसे व्यक्ति को भी कुछ रक़म देने का उल्लेख अपने मृत्यु-पत्र में कर गया होगा, जो नाते में दूर का है, जैसे साले का लड़का है या मौसी का लड़का है अथवा कोई कुल-गुरु अथवा स्टेट का कोई मैनेजर है, जो उस व्यक्ति का अत्यधिक आत्मीय रहा है, तो उस पर इस कर की दरें और भी वर्द्धमान हो जाती हैं।

मोहन—अच्छा, जो लोग बहुत ही मामूली जायदाद छोड़ जाते हैं, उन पर यह कर किस प्रकार लगता है?

बिहारी—छोटी रक़मों पर इस कर की छूट रहती है। दस हज़ार रुपये तक की सम्पत्ति पर प्रायः यह कर नहीं लगाया जाता।

मोहन—परन्तु कुछ लोग इस कर से बचने के लिए कोई-न-कोई कार्रवाई भी तो कर देते हैं। मृत्यु से पहले ही जिसको चाहा उसको दान कर दिया। न दान किया तो फ़र्ज़ी बयनामा लिख दिया।

बिहारी—इस कर की वसूलयाबी में इस तरह की अड़चनें तो बहुत साधारण हैं। इसके लिए वहाँ इस तरह का क़ानून बना हुआ है कि मृत्यु से पूर्व एक वर्ष के भीतर जो भी जायदाद ट्रान्सफ़र की जायगी, वह नाजायज़ समझी जायगी। इतने पर भी लोग इस कर से

बचने की चेष्टा करते अवश्य हैं। परन्तु क़ानून का पालन वहाँ इतनी कड़ाई से होता है कि लोग अधिक जालसाज़ी कर नहीं पाते।

मोहन—अच्छा, तो जो लोग मरने पर कोई मृत्यु-पत्र नहीं छोड़ जाते, उनके उत्तराधिकारियों पर इस कर का व्यवहार किस प्रकार हो सकता है ?

बिहारी—उस दशा में यह कूत लिया जाता है कि अगर इस परिवार के कुटुम्बियों में जायदाद का बटवारा हो जाता, तो उत्तराधिकारियों को जो सम्पत्ति मिलती, वह कितने की होती।

मोहन—इस कर को, चाचाजी, सच जानिये, मैं तो इस देश के लिए बहुत उपयोगी, बल्कि आवश्यक समझता हूँ। हिन्दू राज-नियम में अगर किसी एक व्यक्ति के मरने पर, सम्मिलित कुटुम्ब होने के कारण, जायदाद पर कोई असर न भी पड़े, तो भी मृत्यु-कर के रूप में उत्तराधिकारियों से इसको लेने का विधान आवश्यक होना चाहिए।

बिहारी—यह तो तुम ठीक कहते हो। लेकिन एक तो इस कर से लाभ सम्पन्न देश ही अधिक उठा सकते हैं, ग़रीब देशों में, अधिक लाभ की सम्भावना बहुत कम है। दूसरे भारत जैसे गुलाम देश में अगर यह कर लगाया भी जाय, तो वर्तमान परिस्थिति में जनता की आर्थिक असमानता निवारण हो ही जायगी, इसकी कम ही सम्भावना है। इस प्रकार के करों से लाभ उसी समय उठाया जा सकता है, जब सरकार जनता की हो, देशीय हो और देश की आन्तरिक आत्मा का उत्पीड़न वह हृदय से अनुभव करती हो।

मोहन—परन्तु मेरी राय में तो इस समय भी अगर यह कर हमारे देश में प्रचलित हो जाय, तो थोड़ी-बहुत आर्थिक असमानता का निवारण तो हो ही सकता है।

बिहारी—हाँ, तुम यह कह सकते हो कि पूँजीपतियों की कुछ पूँजी सरकार के हाथ में ज़रूर आ जायगी। पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जनता उसका पूरा लाभ कैसे पा सकेगी?

मोहन—वाह! मैं तो चाहता हूँ कि चाहे जनता को लाभ न भी हो, किन्तु पूँजीपतियों की पूँजी तो घटे।

बिहारी—मैं इससे सहमत नहीं हूँ। पूँजीपतियों से मृत्यु-कर के रूप में छीनी गयी सम्पत्ति आधुनिक प्रचलन के अनुसार अगर विदेशी गोरे हाकिमों की जेबें गरम करने में सहायक होती हो, तो मैं तो इसे अपने देश के लिए अहितकर ही समझूँगा। तुम्हें पता होना चाहिए कि मृत्युकर के रूप में सरकार को लालाजी से जो रक़म मिलती, उससे जनता को उतना लाभ सरकार से मिलना कभी सम्भव न था, जितना वे साधारण रूप से जनता के लिए, अपने दान-पत्र में, कर गये हैं। अत्यन्त ग़रीब घर में वे उत्पन्न हुए थे और उन्हें पूरा ज्ञान था कि ग़रीब लोगों की ज़िन्दगी किस तरह चलती है। मैं उनसे अनेक बार मिला था। अकसर उनसे मेरी बातचीत हुआ करती थी। मैंने कभी नहीं देखा कि उनके किसी कर्मचारी ने आपत्ति के समय उनसे क़र्ज़ माँगा हो और उसकी सहायता उन्होंने न की हो। एक बार उन्होंने स्पष्ट रूप से मुझे बताया था कि पंडितजी, मैं भी इसी तरह का जीवन बिता चुका हूँ। मुझे पता है कि लोग कितना हीन जीवन

व्यतीत करते हैं।

इस तरह की चर्चा के समय मैंने देखा कि उनकी आँखों में आँसू आ गये हैं। लालाजी इन्हीं ग़रीबों का ख़याल रखकर औद्योगिक शिक्षा सम्बन्धी कार्यों के लिए पाँच लाख रुपये का दान कर गये हैं।

मोहन—लालाजी के इस दान की प्रशंसा कौन नहीं करेगा? किन्तु चाचाजी, क्या सचमुच आप वर्तमान स्थिति में, इस देश के लिए, 'मृत्यु कर' की सिफ़ारिश नहीं करना चाहते।

बिहारी—अर्थशास्त्र की दृष्टि से निश्चय ही मैं इसको आवश्यक मानता हूँ। क्योंकि आख़िरकार लालाजी तो पूँजीपति वर्ग में आदर्श पुरुष होने के नाते थे एक अपवाद-मात्र। इसलिए वर्तमान परिस्थिति में भी यदि मृत्युकर हमारे यहाँ लागू हो जाय, तो अप्रत्यक्ष रूप से जनता का कुछ-न-कुछ लाभ तो हो ही सकता है।



बारहवाँ अध्याय

आयात-निर्यात कर

वीरेश्वर ने एक दिन मोहन से कहा—भाई, जब कभी बिजली का करेंट 'आफ़' हो जाता है, तो अँधेरे में मुझे अपने कमरे में बैठना सहन नहीं होता। कम-से-कम एक लालटेन तो ले ही लेना चाहिये। चलो, चौक चलकर ले लें।

दोनों चौक-बाज़ार जा पहुँचे। संयोग की बात, वहाँ मिल गये ज्ञानचन्द। पास खड़े होकर वे आम का मोल-भाव कर रहे थे। वीरेश्वर ने कहा—ज़रा देखो तो मिस्टर ज्ञानचन्द, यह लालटेन कैसी है।

ज्ञानचन्द ने पास आकर देखा, तो मुँह बिदोरकर कह दिया—मुझको तो पसन्द नहीं है। फिर दूकानदार की ओर देखकर बोले—क्या दाम बतलाया ?

दूकनदार—दाम ठीक ही बतलाया है हुज़ूर, तीन रुपये बारह आने।

आश्चर्य्य से वीरेश्वर बोल उठा—बाप रे बाप !—तीन रुपये बारह आने। अभी दो वर्ष पहले इसको डेढ़ रुपये में कोई पूछता न था।

दूकानदार मुसकराने लगा। बोला—वह ज़माना तो अब हवा हो गया जनाब। आजकल यह जर्मनी की लालटेन आती कहाँ है। कलकत्ते में इत्तिफ़ाक से एक दिवालिया कम्पनी के नीलाम में मैं थोड़ा-सा माल पा गया था। उसी में की ये दो-चार लालटेनें बच गयी हैं। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ, आपको यह चीज़ बाज़ार में कहीं मिल नहीं सकती।

विवश होकर वीरेश्वर को लालटेन लेनी पड़ी।

अब तीनों चल पड़े थे। थोड़ी दूर ही अभी आगे बढ़े होंगे कि ज्ञानचन्द बोले—मेरे मामा के साले की बिसातख़ाने की एक दूकान बम्बई में है। युद्ध के पहले एक बार उनसे भेंट हुई थी। बात-चीत के सिलसिले में उन्होंने बतलाया था कि यही लालटेन जो यहाँ उस समय डेढ़ रुपये में मिलती थी, उसकी असली क़ीमत, जो थोक में जर्मनी से लगकर आयी थी, ग्यारह आने के लगभग पड़ती थी।

मोहन ने उत्तर दिया—वहाँ तो सारा काम मशीनें करती हैं। एक दिन के अन्दर हज़ारों की तादाद में बना डालना कोई बड़ी बात नहीं है। और जब माल अधिक संख्या में तैयार होने लगता है, तब उसका सस्ता पड़ना स्वाभाविक हो जाता है।

वीरेश्वर—फिर भी क्या यह नहीं कहा जा सकता कि ये लोग ग्राहकों के साथ व्यवसाय न करके—सच पूछिये—तो उन्हें लूट लेते हैं। कहाँ ग्यारह आना और कहाँ डेढ़ रुपया।

ज्ञानचन्द ने उपहास की चेष्टा में कह दिया—तुम भी रहे पूरे मूर्ख मिस्टर वीरेश्वर, हालाँकि पढ़ते विश्व-विद्यालय में हो। कम-से-कम तुम्हें इतना तो ज्ञान होना चाहिए था कि बाहर के माल पर ड्यूटी भी तो कुछ लगती है। फिर थोड़ा सा भाग लाभ का भी लगाना ही पड़ता है। क्या तुम सोचते हो कि ग्यारह आने की चीज़ तुमको यहाँ सवा ग्यारह आने में मिल जाया करे?

बात मज़ाक में पड़ गयी। क्योंकि वीरेश्वर पहले तो एकदम से अवाक् हो गया। परन्तु फिर ज्ञानचन्द के प्रभाव को घटाने की इच्छा से उसने कह दिया—भले ही ज्ञान की दृष्टि से तुम चन्द हो जाओ किन्तु अशिष्ट संभाषण की कालिमा तुम्हारे इस चन्द्रानन पर कलंक रूप में बनी ही रहेगी। अरे आर्ट्स के छात्र में अर्थशास्त्र की कोई साधारण भूल अगर तुमने पा भी ली, तो इसमें आश्चर्य्य और मूर्खता की कौन-सी बड़ी बात हो गयी!

चौक की यह बात तो यहीं समाप्त हो गयी। पर उस दिन ज्यों ही मोहन घर लौटा, त्यों ही निश्चिन्त होते ही उसने सबसे पहले जो प्रश्न अपने चाचा से किया वह था—चाचा, हमारे देश में जो माल बाहर से आता है, उस पर सुनते हैं, 'ड्यूटी' नाम से कोई कर लिया जाता है। इस कर के सम्बन्ध में आपसे मैंने कुछ नहीं सुना।

बिहारी ने उत्तर दिया—बात यह है कि व्यापार के सम्बन्ध में सरकार को दो प्रकार की नीति का व्यवहार करना पड़ता है। एक तो यह कि बाहर से जो माल देश में आये, उस पर किसी प्रकार का कर न लिया जाय। और अगर लिया भी जाय, तो नाममात्र को। इस नीति का नाम अर्थशास्त्र में रक्खा गया है—मुक्तद्वार-व्यापार-नीति। इसके विपरीत जब बाहर से आनेवाले माल पर कर अधिक मात्रा में लिया जाय, तो उसे अर्थशास्त्र में 'संरक्षण नीति' कहते हैं।

मोहन बोल उठा—नामों के निर्धारण में नीति की सार्थकता का भाव ख़ूब स्पष्ट व्यक्त हुआ है। 'मुक्तद्वार-व्यापार-नीति' का अभिप्राय शायद यह है कि व्यापार की दृष्टि से हमने अपने देश का द्वार खोल दिया है। प्रत्येक बाहरी देश हमारे देश में अपना माल खपाने के लिए सर्वथा स्वतंत्र है। और 'संरक्षण नीति' का भाव कुछ ऐसा लक्षित होता है, जैसे विदेशी माल को अपने देश में आने के सम्बन्ध में हमें इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि अपने देश के उद्योग-धंधों को यथेष्ट उत्तेजन मिलने में किसी प्रकार की शिथिलता हमें स्वीकार न हो। अर्थात् स्वदेशी उद्योग-धंधों की रक्षा करना हमारा प्रथम कर्तव्य है।

बिहारी—बिल्कुल ठीक। यहाँ इतना जान लेना और आवश्यक है कि जब सरकार मुक्तद्वार-व्यापार-नीति का पक्ष लेती है और केवल आय के लिए उसे विदेशी वस्तुओं पर कर लगाना पड़ता है, तब उसे उसी प्रकार की स्वदेशी वस्तु पर भी कर लगाना पड़ता है।...हाँ, तो इस

नीति के अनुसार विदेशी माल पर जो कर, माल मँगानेवालों से वसूल किया जाता है, उसे अर्थशास्त्र में 'आयात-कर' कहते हैं। प्रत्यक्ष करों के सम्बन्ध में तुम पहले जान ही चुके हो। किन्तु यह आयात-कर अप्रत्यक्ष-कर की श्रेणी में आता है।

मोहन—अच्छा तो जो माल यहाँ से दूसरे देशों को जाता है, सरकार उस पर कर लेती होगी।

बिहारी—हाँ, ऐसे कर के लिए अर्थशास्त्र में 'निर्यात-कर' शब्द का व्यवहार किया जाता है। किन्तु आयात-कर से यह कर अपने गुण और प्रकार दोनों में भिन्न होता है। आयात-कर वसूल किया जाता है, माल के क्रेता से और निर्यात-कर लिया जाता है माल के विक्रेता से।

मोहन—यह तो अन्याय है विक्रेता-वर्ग के साथ।

बिहारी—बात यह है कि जब माल जाता है विदेशों को, तब विभिन्न-देशवासी व्यवसायियों से उस पर कर लेने में सरकार किसी तरह की असुविधा क्यों स्वीकार करे! इसीलिए सिवा इसके कि वह माल बेचनेवालों से ही यह कर वसूल करे, उसके समक्ष कोई अन्य उपाय भी तो नहीं रह जाता।

मोहन—आयात-कर की दो प्रकार की नीतियों में सरकार को आय किससे अधिक होती है?

बिहारी—मुक्तद्वार-व्यापार-नीति में आयात-कर की दरें नीची रखनी पड़ती हैं। क्योंकि उद्देश्य रहता है विदेशों के माल को अपने देश में फैलने का पूर्ण अवसर देना, जिससे उस माल

का दाम अधिक न बढ़े और जनता को नवीन वस्तुओं के व्यवहार का सुख लाभ करने की पूरी सुविधा प्राप्त रहे और सभ्यता की वृद्धि हो।

मोहन—तो संरक्षण-नीति के अनुसार सरकार को विदेशी माल पर आयात-कर की दरें ऊँची रखनी पड़ती होंगी। क्योंकि सरकार का उद्देश्य रहता होगा देश के अन्दर के उद्योग-धन्धों का प्रोत्साहन देना। और इस प्रकार हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि आय की दृष्टि से संरक्षण नीति ही सरकार के लिए अधिक उपयोगी होती है।

बिहारी—निश्चय ही।

मोहन—किस समय सरकार किस नीति का व्यवहार करती है, इस सम्बन्ध में भी कोई नियम होगा।

बिहारी—यह देश की राजनैतिक परिस्थिति पर निर्भर रहता है। सरकार जब जैसी परिस्थिति देखती है, तब तैसा करती है।

मोहन—किन्तु यह तो एक साधारण नियम हुआ। जब कोई साम्राज्य इतना विस्तृत हो कि उसके अन्तर्गत अनेक देश आ जाते हों, तब सम्पूर्ण साम्राज्य की सरकार इस विषय में किसी विशेष नीति का व्यवहार करती होगी।

बिहारी—हाँ, करती क्यों नहीं है? इस नीति को अर्थशास्त्र में 'साम्राज्यान्तर्गत रियायत' कहते हैं। इसके दो भेद हैं। साम्राज्य के अन्दर आनेवाले देशों के माल के साथ मुक्तद्वार-व्यापार-नीति का

व्यवहार किया जाता है; किन्तु साम्राज्य के बाहरवाले देशों के माल के साथ संरक्षण-नीति का।

मोहन—आयात कर का साधारण प्रभाव देश पर क्या पड़ता है?

बिहारी—जिन वस्तुओं पर यह कर लगाया जाता है, उनकी क़ीमत बढ़ जाती है। जब उपभोक्ता उन चीज़ों को व्यवहार करने में अभ्यस्त हो जाते हैं, तब बढ़ी हुई क़ीमतों पर भी वे चीज़ें उन्हें ख़रीदनी ही पड़ती हैं। परन्तु उन वस्तुओं की क़ीमतों की वृद्धि वास्तव में निर्भर करती है मांग की लोच पर। अर्थात् यदि वस्तु की मांग लोचदार कम हुई, तात्पर्य्य यह है कि वह वस्तु जीवनोपयोगी हुई, तो उसका मूल्य कर के बराबर बढ़ जायगा और उसका भार उपभोक्ताओं पर पड़ेगा। किन्तु यदि मांग लोचदार हुई, अर्थात् वस्तु विलासिता की पूर्ति करनेवाली हुई, तो उसका मूल्य कम बढ़ेगा। फलतः उसका कर भी उपभोक्ताओं पर कम पड़ेगा और कर का भार उत्पादकों को भी सहन करना पड़ेगा।

मोहन—तो आप कहना यह चाहते हैं कि जो पदार्थ जीवनोपयोगी हैं,—जैसे कपड़ा, मिट्टी का तेल और दियासलाई इत्यादि—उन पर आयात-कर जहाँ तक हो सके, सरकार को, न लगाना चाहिए।

बिहारी—निश्चय ही।

मोहन—अच्छा, यह तो हुई सिद्धान्त की बात। अब आप यह

बतलाइये कि इस विषय में भारत-सरकार की नीति क्या रहती आयी है ?

बिहारी—हमारे देश में सन् १९१८ ई० से पूर्व सरकार मुक्तद्वार-व्यापार-नीति का व्यवहार किया करती थी। असहयोग-आन्दोलन के युग में सरकार का ध्यान देश के उद्योग-धन्धों की ओर आकृष्ट हुआ। फलतः सन् १९२१ ई० में आर्थिक जांच-कमेटी नियुक्त की गई। सन् १९२२ ई० में उसने सिफ़ारिश की कि भारतीय उद्योग-धन्धों की रक्षा के लिए बाहर से आने वाले माल पर विशेष कर लगना चाहिए और भारत में बननेवाले माल पर कर बिल्कुल न लगना चाहिए। फलतः सरकार ने टेरिफ़बोर्ड नियुक्त किये। उनकी सिफारिशों के अनुसार लोहे और फ़ौलाद का सामान, काग़ज़, कपड़ा, दिया-सलाई और चीनी के आयात पर अधिक कर लगाकर उन्हें इस योग्य बना दिया गया कि ये वस्तुएँ यहाँ की बनी वस्तुओं की अपेक्षा सस्ती न रह सकीं, वरन् कुछ मँहगी ही हो गयीं। सन् १९२६ ई० में रूई के स्वदेशी माल पर लगने वाला कर भी रद्द कर दिया गया।

मोहन—किन्तु चाचा, इसका तो मतलब यह हुआ कि सरकार यदि चाहती, तो हमारे देश के उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिए वह इससे बहुत पूर्व ही संरक्षण-नीति का व्यवहार कर सकती थी।

बिहारी—पहले-पहल सरकार ने सन् १८९४ ई० में विदेशी कपड़े पर ५) प्रतिशत आयात-कर लगाया था। अतएव इसके साथ

ही उसने इस देश के सूत और उससे बने माल पर भी इतना कर लगाया। इस पर जब लंकाशायर के व्यापारियों ने आन्दोलन किया, तो सरकार ने सन् १८९६ ही में विदेशी कपड़े पर आयात-कर घटा कर ५) से ३।।) कर दिया। इस प्रकार सन् १९२६ ई० तक अर्थात् पूरे बत्तिस वर्ष तक सरकार ने मुक्त-द्वार-व्यापार-नीति का व्यवहार कर भारतीय उद्योग-धन्धों की उन्नति की ओर क़तई ध्यान नहीं दिया। रुई, सूत और कपड़े के भारतीय व्यवसाय की जो असीम क्षति इस काल में हुई, अर्थशास्त्र का ज्ञान रखनेवाली हमारी साधारण जनता उससे नितान्त अपरिचित रही है। अब भी कांच की तरह के कुछ उद्योग-धन्धे ऐसे हैं, जिनको संरक्षण-नीति के द्वारा प्रोत्साहन मिलना आवश्यक है, पर मिल नहीं रहा है। ओटावा के समझौते के अनुसार भारत-सरकार जिस 'साम्राज्यांतर्गत रियायत' नीति का व्यवहार कर रही है, वह भारतीय वाणिज्य के लिए घातक है।

उस दिन यह वार्तालाप यहीं समाप्त हो गया। दूसरे दिन जब मोहन वीरेश्वर से रास्ते में मिला, तो वीरेश्वर उसे हास्टल के अपने कमरे में ले गया। वहाँ मोहन ने देखा कि जो लालटेन वीरेश्वर ने कल उसके साथ ख़रीदी थी, वह ग़ायब थी। उसके स्थान पर उसने देखी एक, देखने में साधारण, किन्तु वास्तव में अधिक मज़बूत एक दूसरी लालटेन, जो कलकत्ते की बनी (स्वदेशी) थी।

मोहन उसे देखकर आश्चर्य्य और प्रसन्नता से चकित हो

गया। वीरेश्वर ने इसी समय कहा—बात यह हुई कि रास्ते में ही मेरा विचार बदल गया और मैंने सोचा कि इससे तो अच्छा यही होगा कि मैं अपने देश की बनी हुई वस्तु ही ख़रीदूँ।

इस समय मोहन सोचने लगा कि यदि सरकार संरक्षण-नीति के अनुसार व्यवहार करे, तो हमारे देश का वाणिज्य-व्यवसाय बहुत जल्दी उन्नत हो सकता है।



तेरहवाँ अध्याय

आबकारी

जून मास समाप्त हो गया है और जुलाई का प्रथम सप्ताह चल रहा है, तो भी पानी नहीं बरस रहा है। मकान के अन्दर शाम को घड़ी-दो-घड़ी के लिए बैठना कठिन हो जाता है। इसीलिए मोहन प्रायः चाचा के साथ बाँध पर घूमने निकल जाया करता है। आज भी वह बाँध पर टहल रहा था। लौटते समय क़िले के निकट रेलवे-क्रासिंग के आगे ज्योंही वे बढ़े, तो देखते क्या हैं कि क़िले की ओर से एक आदमी बड़े विचित्र ढङ्ग से चल रहा है। उसके पैर ठीक ढङ्ग से पड़ नहीं रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है, मानो वह गिर पड़ेगा। चाहे ऐसे बिचित्र आदमी को मोहन को दिखलाने के ही अभिप्राय से हो, अथवा उनका अपना ही कुतूहल रहा हो, बिहारी बाबू उस स्थल पर खड़े हो गये। अब दोनों उसको और भी सावधानी से देखने लगे। थोड़ी देर में वह आदमी बैरहना जानेवाली सड़क

की ओर मुड़ गया। तब चचा-भतीजे भी बाँध की ओर चल दिये। मोहन ने इसी क्षण पूछा—जान पड़ता है, यह आदमी बहुत अधिक शराब पिये हुए था।

बिहारी—उसके चलने के ढङ्ग से उसे देखते ही मैं ताड़ गया था।

मोहन—यह भी कोई जीवन है चाचा? पैसा-का-पैसा अधिक ख़र्च हो और आदमी अपनी चेतना, होशोहवाश और तन्दुरुस्ती चौपट कर डाले। मुझे तो ऐसे लोगों को देखकर बड़ा तरस आता है। सरकार इन मादक वस्तुओं पर इतना अधिक कर क्यों नहीं लगा देती कि ये लोग शराब किसी तरह ख़रीद ही न सकें।

बिहारी—मादक द्रव्यों पर जो कर लगाया जाता है, वह उत्पत्ति पर होता है। और उत्पत्ति पर कर दो उद्देश्यों से लगाया जाता है—(१) उपभोग कम करना और (२) सरकारी आय की बृद्धि करना।

मोहन—उपभोग कम करने में सरकार का क्या उद्देश्य रहता है?

बिहारी—उन्हीं वस्तुओं का उपभोग सरकार कम कराना चाहती है, जो अस्वास्थ्यकारक होती हैं। मादक द्रव्य इसी श्रेणी में आते हैं। इन पर कर लगाने की दो प्रणालियाँ हैं—एक तो उत्पत्ति पर एकाधिकार स्थापित करके, दूसरे जिनको बेचने का अधिकार दिया जाता है, उनसे कर वसूल करके।

मोहन—उत्पत्ति पर एकाधिकार से आपका क्या अभिप्राय है?

बिहारी—अर्थात् सरकार ही ऐसे पदार्थों की उत्पत्ति का कार्य अपने निरीक्षण अथवा प्रबन्ध में करती है और वही उसको ठेके पर बेचती भी है।

मोहन—किन्तु मुझे तो शिकायत यह है कि जब मादकद्रव्य जनता के लिए सर्वथा हानिकर हैं, तब उनकी उत्पत्ति ही एकदम से क्यों नहीं रोक दी जाती?

बिहारी—पर कुछ मादकद्रव्य ऐसे भी हैं, जिनकी उत्पत्ति रोकी नहीं जा सकती, क्योंकि चिकित्सा के लिए कुछ विशेष औषधियों के निर्माण में उनकी आवश्यकता भी तो पड़ती है।

मोहन—तो मादक वस्तुओं का उत्पादन इतना कम कर दिया जाय कि औषधि के सिवा और किसी भी प्रकार वे जनता के लिए सुलभ न हों।

बिहारी—किन्तु अगर सरकार इस उद्देश्य को सामने रखे भी तो उसे इस विषय में सफलता तभी मिल सकती है, जब वह धीरे-धीरे मादकद्रव्यों के ठेके, उसकी दूकानें, कम कर दे। बिक्री का समय उत्तरोत्तर घटा दिया जाय और एक ऐसी तिथि निश्चित कर दी जाय, जब इन द्रव्यों का व्यवहार एकदम से बन्द हो जाय।

मोहन—किन्तु वर्तमान प्रान्तीय सरकारें तो जान पड़ता है, मादक-द्रव्यों के निषेध के सम्बन्ध में उदासीन हैं।

बिहारी—बात यह है कि सरकार का उद्देश्य मादकद्रव्यों की उत्पत्ति से आय करने का होता है, तब आन्तरिक प्रेरणा निषेधात्मक रखती हुई भी वह इस नीति का व्यवहार करती है कि मादकद्रव्यों

का उपभोग भी बढ़ने न पाये और आमदनी में भी अन्तर न पड़े। इसी को दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि सरकार का उद्देश्य यह हो जाता है कि जिन लोगों को मादकद्रव्यों के व्यवहार की आदत पड़ गयी है, वे उनका उपभोग भी करते रहें, ताकि आय में कमी न हो और उस पर इतना कर भी बना रहे कि मादक वस्तुओं के प्रेमी नये रँगरूट भी इस क्षेत्र में पदार्पण न कर सकें। आजकल हमारी सरकार इसी नीति का अवलम्ब ले रही है।

मोहन—परन्तु चाचाजी, यह भारत जैसे ग़ुलाम देश में ही सम्भव है। अगर हमारे देशवासी इस बात पर कटिबद्ध हो जायँ कि चाहे जो हो, हम अपने देश के नव-नव जागरण को मादकवस्तु-सेवन जैसी विषैली बीमारी से आक्रान्त होने से बचायेंगे ही। अगर हमारे देश के नेताओं और समाज-सुधारकों को, उन मरभुखी अर्धनग्न नारियों और मरघिल्ले, अस्वस्थ बच्चों का ख़्याल हो, जो ऐसे संरक्षकों के अज्ञान, कुसंगति और दुर्बलताओं के शिकार हो रहे हैं, जो अपना नशा पूरा करने के आगे अपने कुटुम्ब के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व खो बैठे हैं और जिनकी इस घातक नाशकारी दुर्बलता को प्रोत्साहन देती रहती है हमारी वर्तमान सरकार, तो क्या यह कभी सम्भव हो सकता था कि हम इस स्थिति को सहन कर सकते! मुझे तो जब कभी कानपुर के उन मिल-मज़दूरों की आन्तरिक स्थिति की याद आ जाती है, जो अपने दिन-भर की कमाई शराब पीकर स्वाहा कर देते हैं और जिनके बीवी-बच्चे भूखों मरते हैं, तन ढकने को जो कपड़े नहीं प्राप्त कर पाते, बीमार पड़ने पर न जिनकी चिकित्सा

का प्रबन्ध हो सकता है, न पथ्य और पौष्टिक आहार का, तब सरकार की इस दुर्नीति को देखकर मेरा हृदय हाहाकार कर उठता है। कांग्रेस-सरकार ने इस ओर ध्यान दिया भी और उसके इस आयोजन की सराहना भी देश-भर में हुई, पर उसके पश्चात् ज्यों ही कांग्रेस की सरकार अपने अधिकारों से च्युत हुई, त्यों ही सब किया कराया चौपट हो गया।

बिहारी—पर हम मूल विषय से थोड़ा बहके जा रहे हैं। मादक द्रव्यों के निषेध का आयोजन तो तभी सफल हो सकता है, जब आबकारी-विभाग के निरीक्षक ईमानदार, सच्चे और कर्तव्य-परायण हों और जो घूस के नाम पर अपनी सचाई और कर्तव्य-निष्ठा को बेच न डालें। नैतिक दृष्टि से आदर्शों के निर्वाह के नाम पर जो ऐसे दृढ़-संयमी हों कि आर्थिक प्रलोभनों से सर्वथा दूर रह सकें। किन्तु हमारे देश की जैसी वर्तमान स्थिति है, उसको देखते हुए ऐसे सच्चे कार्य-कर्ताओं का मिलना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। इसी का यह दुष्परिणाम होता है कि क़ानूनी प्रतिबन्धों के रहते हुए भी लोग अनधिकार-पूर्वक मादक-द्रव्यों का उत्पादन प्रारम्भ कर देते हैं। वे इस काम को केवल घूस के बलपर, मनमाने ढङ्ग से, छिपे-छिपे करते रहते हैं। जो कर्मचारी मासिक वेतन रूप में सौ रुपये पाते हैं, उनकी मासिक आय ऐसी स्थिति में एक-एक हज़ार रुपये हो जाती है। इस तरह सरकार को दोनों ओर से क्षति होती है। एक ओर से उसकी उत्पत्ति सम्बन्धी आय रुक जाती है और दूसरी ओर उस पर मिलनेवाले कर से भी वह वंचित हो जाती है।

मोहन—किन्तु ऐसे आदमी मिल ही नहीं सकते, यह मैं नहीं मान सकता। गान्धीवाद के प्रभाव से हमारे देश में सच्चे, स्वार्थ-त्यागी और कर्तव्य-परायण व्यक्ति खोजने पर मिल सकते हैं। फिर शासन की पुरानी मैशिनरी से इस तरह की ज़िम्मेदारी का काम लिया भी तो नहीं जा सकता। इस के लिए तो सच्चे और थोड़े से वेतन पर केवल सेवा-भाव से काम करनेवाले कार्य-कर्त्ता हमें ढूँढ़ने चाहिये। उनका एकमात्र यही काम हो कि वे अपने क्षेत्र में विधान को कठोरता-पूर्वक निर्वाह करने का एक आदर्श उपस्थित करें। थोड़े ही समय बाद वे वहाँ एक ऐसा वातावरण उपस्थित कर देंगे कि व्यवस्था और विधान के अनुसार कष्ट सहन करके भी अपने देश और समाज को समुन्नत बनाने के इस पवित्र काम में योग देना लोग अपने लिए एक गौरव की वस्तु समझने लगेंगे।

बिहारी—अगर ऐसे आदमी मिल सकें तो प्रत्येक प्रान्तीय सरकार का यह कर्तव्य होना चाहिये कि मादक-द्रव्य-निषेध नीति का अवलम्बन करे। रह गयी बात घाटे की। सो प्रारम्भ में घाटा अवश्य होगा। परन्तु जब हमारा समाज मादकद्रव्यों का व्यवहार रोक देगा, तब उसका साधारण स्वास्थ्य भी तो अवश्य ही समुन्नत हो जायगा। इससे उसकी कार्य-क्षमता की वृद्धि होगी और साथ ही उत्पादन की शक्ति बढ़ जायगी, जिसका फल यह होगा कि साधारण जनता की आय बढ़ेगी और जनता की आय बढ़ने से सरकार को अधिक आय-कर की प्राप्ति होगी। किन्तु मैं तो यह भी कहना चाहता हूँ कि अगर इस तरह सरकार की घटी पूरी न भी हो, तो उसके लिए सीधा मार्ग खुला

हुआ है कि वह अन्य करों से उसकी पूर्ति कर ले। केवल अपनी आय के लिए उस प्रजा में मादक पदार्थों का सेवन जारी रखना, जो सर्वथा अशिक्षित, अज्ञानान्धकार में डूबी हुई और चेतना से हीन है, उस देश की नयी पौध और उसके विकासशील जीवन का नाश करने के समान अपराध है।

तदनन्तर मोहन ने, कुछ ठहरकर, धीरे से कहा—हमारी सरकार की नीति तो चाचाजी बिलकुल बनियों की-सी जान पड़ती है। एक ओर से वह मादक वस्तुओं के सेवन को प्रोत्साहन भी नहीं देती, अर्थात् वह यह नहीं चाहती कि नये आदमियों को इसके सेवन के लिए प्रवृत्त किया जाय। परन्तु दूसरी ओर वह इतनी उदार भी रहना चाहती है कि जिन्हें मादक वस्तुओं के सेवन की आदत पड़ गयी हो, यानी जो उसके बिना रह न सकें, उन्हें वे वस्तुएँ मिलती भी जायँ।

उस दिन तो यह वार्तालाप यहीं समाप्त हो गया। किन्तु तीन दिन बाद मोहन ने बिहारी से बतलाया कि उसके गाँव में गाँजा, भाँग और शराब का जो ठेका था, वह उठ गया। बात यह हुई कि जो लोग इस ठेके में बोली बोलनेवाले थे, उनके घर में ही विरोध उत्पन्न हो गया। उनके नवयुवक भाई-बन्धुओं और पुत्रों ने आपस में सलाह कर अपने उन अभिभावकों से कह दिया कि यदि आप हमारे निवेदन पर ध्यान नहीं देंगे, अर्थात् इसके ठेके के लिए बोली बोलेंगे, तो फिर आप से हमारे सारे सम्बन्ध टूट जायँगे। तीन दिन तक इस विषय में इतनी तनातनी रही और यह मामला इतना तूल पकड़

गया कि विरोधी नवयुवकों ने कहा कि जब तक इसका निश्चय नहीं हो जाता, तब तक हम लोग अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे। नतीजा यह हुआ कि गाँव से मादकवस्तुओं की दूकान ही उठ गयी।

बिहारी ने इस पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—यदि ऐसे दृढ़ प्रतिज्ञ कार्य-कर्ता मिलें, तो मादक-वस्तु-निषेध की योजना को सफल होने में देर न लगे। देखें कब तक वह दिन आता है।



चौदहवाँ अध्याय

उत्पत्ति पर कर

रविवार होने के कारण बिहारी बाबू आज सपरिवार भोजन कर रहे थे। बिल्लू और मुनियाँ उनके दायें ओर बैठे थे, मोहन बायें ओर। मोहन की चाची ताज़ी रोटी सेंककर परोसती जाती थी। बिल्लू की थाली में दाल चुक गयी, तो उसकी माँ उसे परोसने लगी। इसी समय मोहन बोल उठा – चाची, थोड़ी-सी मुझे भी देना। आज दाल वास्तव में बहुत स्वादिष्ट बनी है। मिली भी ख़ूब है।

तब चाची ने पूछ दिया—और नमक तो ठीक है न?

मोहन ने उत्तर में कहा—बिल्कुल ठीक है चाची, ज़रा भी कम न ज़्यादा।

बिहारी कहने लगे—सारा खेल नमक का है। अन्दाज़ ठीक है, तो चाहे साग-भाजी हो, चाहे दाल, सभी रुचिकर जान पड़ेगा।

परन्तु अगर नमक अन्दाज़ में अन्तर हो गया, तो सभी अरुचिकर लगेगा। मेरा तो हाल यह है मोहन कि अगर साग और दाल, किसी में भी, नमक अधिक पड़ गया, तो मुझ से इच्छानुसार भोजन किया ही नहीं जाता। अकसर अधपेटे उठ आना पड़ता है।

मोहन—भोजन में नमक का महत्व अक्षुण्ण है। शायद इसीलिए अर्थशास्त्र में इसको जीवन-रक्षक पदार्थ माना गया है।

भोजन कर चुकने पर जब बिहारी अपनी बैठक में पहुँचे, तो मोहन को निकट देखकर उन्होंने प्रश्न कर दिया—जानते हो, नमक से, कर के रूप में, सरकार को कितनी आय होती है?

मोहन—नहीं मालूम।

बिहारी—लगभग सात-आठ करोड़ रुपये वार्षिक।

आश्चर्य्य के साथ मोहन ने कहा—अच्छा! अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति, ≡) वार्षिक सरकार को इसलिए देता है कि वह नमक खाता है। लेकिन चाचा, नमक तो हमारे देश में पैदा होता है। इस पर सरकार चाहे तो कर नहीं भी ले सकती है।

बिहारी—जो पदार्थ विलासिता के लिए उपयोगी होते हैं और जिनकी माँग लोचदार होती है, उनकी उत्पत्ति पर कर लगाने से क़ीमत प्रायः कम बढ़ती है। अतएव उन पर कर लगाने से सरकार को लाभ कम होता है। किन्तु जीवन-रक्षक-पदार्थों जिनकी माँग कम लोचदार होती है, उनकी उत्पत्ति पर कर लगाने से क़ीमत अधिक बढ़ती है। ऐसे पदार्थों पर कर लगाने से द्रव्य की विशेष प्राप्ति होती

है। इसीलिए सरकार प्रायः जीवन-रक्षक-पदार्थों पर कर लगाने का लोभ संवरण नहीं कर पाती।

मोहन—लेकिन एक तो यह कर उत्पत्ति पर लगता है, दूसरे नमक जीवन-रक्षक-पदार्थों में सब से अधिक महत्व का है। भोजन के लिए अनिवार्य्य होने के कारण इसका भार अत्यन्त दीन-हीन व्यक्ति पर भी पड़ता है। कितने आश्चर्य्य किन्तु परिताप का विषय है कि नमक पर, व्यक्तिगत रूप से, किसी राजा-महाराजा पर भी उतना ही कर पड़े, जितना किसी निहायत ग़रीब पर। प्रजा के प्रतिनिधियों को इसके लिए सरकार से लड़ना चाहिए।

बिहारी ने मुस्कराते हुए कहा—भारत-सरकार के साथ, प्रजा-पक्ष की ओर से, किसी कर का ऐसा संगठित विरोध नहीं हुआ, जैसा इस कर के लिए हुआ। तुमको पता होना चाहिए कि यही वह कर है, जिसके विरोध में महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत-व्यापी सत्याग्रह-आन्दोलन किया गया था। इसी का विरोध करके हज़ारों भारतीयों को कारागार-वास का दंड स्वीकार करना पड़ा था।

मोहन—पर उस आन्दोलन को तो सफलता मिली थी।

बिहारी—कुछ सफलता मिली, तभी तो आजकल नमक पर सरकार १।) मन कर लेती है। एक समय सरकार ने व्यवस्थापिका सभा के विरोधी मन्तव्य की अवहेलना कर यह कर दूना कर दिया था।

मोहन—अच्छा चाचाजी, हमारे देश में जब अँगरेज़ों का राज्य नहीं था, तब क्या यह कर नहीं लगता था?

बिहारी—लगता था। परन्तु नमक के उन व्यवसायियों

पर लगता था, जो उसे एक जगह से दूसरी जगह ले जाते थे। जनता को स्वतंत्रता-पूर्वक नमक बनाने और उसका उपयोग करने की पूरी स्वतंत्रता थी। आज की परिस्थिति उससे कितनी भिन्न है? एक तो सरकार का इस पर एकाधिकार स्थापित है। वह ख़ुद ही बनाती है, दूसरे उसके विक्रय पर कर लेती है। और यह मानी हुई बात है कि जो भी कर माल की बिक्री पर लगता है, उसका भार दूकानदार अपने ग्राहकों पर छोड़ देता है। उसका परिणाम यह होता है कि उपभोक्ताओं को पता तक नहीं लगता कि उन पर कर लग रहा है। तुम्हीं को आज इसका क्या पता था कि जिस नमक की बात तुम कर रहे थे, उस पर कितना कर तुम्हें, अथवा तुम्हारे अभिभावकों को, देना पड़ा है?

मोहन—बिल्कुल नहीं।

बिहारी—इस कर के सम्बन्ध में हमारे देशवासियों की ही नहीं, विदेशी विद्वानों की भी यही राय है कि यह अनुचित है। रेज़मे-मेकडानल्ड का कथन है कि नमक पर कर लेना तो ज़ुल्म है। यह धन की लूट है। यदि प्रजा इसे समझती तो उसमें बेचैनी उत्पन्न हो जाती।

मोहन—इसकी लागत कितनी पड़ती होगी?

बिहारी—इसके तैयार करने का ख़र्च तो बहुत ही कम होता है। मार्ग-व्यय में भी कुछ ख़र्च होता है। तो भी कर तो लागत की अपेक्षा कई गुना लगता है। सोचने की बात है कि जो पदार्थ हमारे देश में सस्ता-से-सस्ता पड़ सकता हो, वह इतना महँगा पड़े कि किसान उसे

उचित मात्रा में अपने पशुओं तक को न दे सकें। देश का यह कितना बड़ा दुर्भाग्य है और सरकार का अपनी प्रजा के साथ कितना बड़ा अन्याय ?

मोहन—किन्तु चाचा, जीवन-रक्षक पदार्थ नमक के सिवा चीनी भी तो हैं। इसके सम्बन्ध में सरकार की क्या नीति रही है ?

बिहारी—चीनी की उत्पत्ति पर भी सरकार कुछ वर्षों से कर लगाने लगी है, इससे चीनी के मूल्य में कुछ वृद्धि हुई है और उसका भार उपभोक्ताओं पर पड़ रहा है। किन्तु चीनी की समस्या हमारे किसानों के लिए उतनी भीषण नहीं है, जितनी नमक की है। किसान लोग साधारणतया अपने घरों में गुड़ का व्यवहार करते है। चीनी बताशा और मिठाई का प्रयोग उनके यहाँ किसी पर्व, त्यौहार अथवा अतिथि-सत्कार के ही अवसर पर होता है। किन्तु नमक तो ऐसी वस्तु है कि उसके बिना काम ही नहीं चल सकता। कृषि-प्रधान होने के कारण प्रकृति ने ही हमारे देश को महासागर, नमक की झील तथा पहाड़ से सम्पन्न बनाया। अपने देश की इस अनिवार्य्य आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रकृति तक ने तो उसका ख़याल किया, पर सरकार, जो प्रजा की रक्षक कहलाती है, नमक पर एकाधिकार स्थापित कर के—रेमज़े मेकडानल्ड के शब्दों में—धन की लूट करती है !

मोहन—स्वदेशी व्यापार पर तो सरकार को संरक्षण-नीति का अवलम्बन करना चाहिए।

बिहारी—किन्तु हमारी सरकार एक ओर संरक्षण-नीति का प्रयोग करती है, दूसरी ओर उस पर कर लगाती है। यह एक तरह से

देश का शोषण है।

मोहन—इससे अच्छा हो कि वह विलासिता की वृद्धि करनेवाली वस्तुओं की उत्पत्ति पर हो कर लगाये।

बिहारी—विलासिता की वस्तुओं पर यदि वह कर लगाये, तो एतराज़ किसे हो सकता है! पर यहाँ तो नीति ही ऐसी व्यवहृत होती है कि साधारण जनता पनप नहीं पाती। यदि सन् १९३० ई० में महात्मा गांधी ने नमक पर सत्याग्रह न प्रारम्भ किया होता, तो कहा नहीं जा सकता कि देश की कितनी अपार क्षति होती। अब आज-कल तो देश में दियासलाई और मिट्टी के तेल की उत्पत्ति पर भी कर लगाया जा रहा है। इन करों से भी ग़रीबों पर कर का भार बहुत अधिक हो रहा है। न्याय की दृष्टि से इस भार को कम करने की बहुत आवश्यकता है।

मोहन—जब तक सरकार जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी नहीं होती, तब तक इस प्रकार की शिकायतें दूर नहीं हो सकतीं।

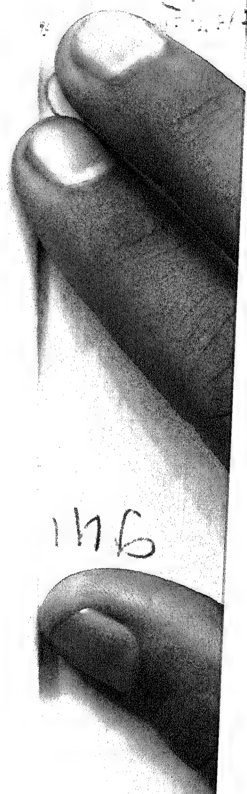
उस समय यह वार्तालाप यहीं समाप्त हो गया। शाम को जब बिहारी बाबू टहलने के लिए बाहर जाने को उद्यत हुए, तो बिल्लू की माँ ने कहा—मैं सोचती थी कि सेंधा नमक का एक ढेला अभी रक्खा है, किन्तु मुझे ख़याल ही न रहा कि वह तो मैंने नीचे गैया को चाटने के लिए रखवा दिया है। सो अगर बाज़ार जाना हो, तो सेंधा नमक लेते आना।

तब साथ चलते हुए बिहारी ने मोहन से कहा—हमारे देश में

पशुओं का स्वास्थ्य जो बहुत गया-बीता रहता है, उसका मुख्य कारण यह है कि उन्हें उचित मात्रा में नमक खाने को नहीं मिलता। यदि उन्हें नित्य थोड़ा-सा नमक मिल जाया करे, तो उनका स्वास्थ्य अपेक्षाकृत बहुत अच्छा रहे। यही गैया जब हमने मोल ली थी, तुमने देखा होगा, कितनी दुर्बल थी! किन्तु अभी एक साल पूरा नहीं हुआ और कितनी बदल गयी है।

मोहन ने उत्तर दिया—दूध भी तो दोनों वक्त में आठ-नौ सेर देती है।





पन्द्रहवाँ अध्याय

अन्य कर

एक दिन मोहन अपने मित्र वीरेश्वर के साथ सिनेमा देखने चला गया था। टिकट लेते समय उसे पता चला कि आठ आनेवाले दरजे का टिकट अब नौ आने पैसे में मिलता है। उस समय तो उसने एक आना पैसा तुरन्त दे दिया। परन्तु उसे यह बात जानने की उत्सुकता बनी ही रही कि यह एक आना उससे अथवा उस श्रेणी के दर्शकों से क्यों लिया जाता है। इस सिलसिले में एक बात और हुई। वह यह कि जब वह सिनेमा देखकर हाल से बाहर हुआ और वीरेश्वर के साथ चल दिया, तो उसे पता चला कि इस सिनेमा-हाउस में सबसे निम्नकोटि का जो दरजा है, वह साढ़े चार आने का है। तब उसके मन में आया कि हो न हो, इस दरजे के टिकट में भी चार आने के बाद ये दो पैसे ऊपर से ही बढ़ाये गये हैं। किन्तु फिर भी इस विषय में उसने वीरेश्वर से कुछ पूछा नहीं। उस दिन

तो देर से घर पहुँचने के कारण मोहन मौन रहा, पर दूसरे दिन अपने चाचा से इस सम्बन्ध में अपनी शंका किये बिना उससे रहा नहीं जा सका। उसने पूछा—चाचाजी, आपको मालूम ही है कि कल मैं सिनेमा देखने के लिए गया हुआ था। आपको यह भी पता है कि कल कई वर्ष के बाद ऐसा अवसर आया था। उस समय मैंने एक बार कानपुर में सिनेमा देखा था। वहाँ के टिकटों की दरें चार आने, छै आना, आठ आने, बारह आने और एक रुपया थीं। परन्तु कल तो उस सिनेमा-हाउस की दरें देखकर मैं दंग रह गया। आख़िर चार आने के बाद दो पैसा और आठ आने के बाद यह एक आना बढ़ा लेने की मंशा क्या है! अगर सभी दरजों का चार्ज बढ़ा देने के इरादे से यह परिवर्तन किया गया है, तो मैं कहूँगा कि यह ठीक ढङ्ग से नहीं हुआ है। इसमें टिकट लेने और देनेवाले दोनों असुविधा में पड़ जाते हैं। लोगों के पास रेजकारी या पैसा प्रायः कम ही रहता है। टिकट देनेवाले को भी पैसा लौटाने में असुविधा तो होती ही है, दूसरे ग्राहकों की भीड़ निपटाने में देरी भी लगती है। मुझे जब एक आना ऊपर से देना पड़ा, तो अच्छा नहीं लगा। मैं जानना चाहता हूँ, इस विषय में आपकी क्या राय है?

बात के प्रारम्भ में ही बिहारी के मन में आया था कि तुरन्त ही मोहन की शंका का समाधान कर दें। परन्तु उन्होंने उसकी बात नहीं काटी। सोचा, अब इसे जो कुछ इस विषय में कहना हो, अच्छा है, उसे कह ही ले। अतः जब मोहन अपनी बात पूरी कर चुका, तो बिहारी

ने उत्तर दिया—यह तो बहुत मामूली बात है और मुझे आश्चर्य्य है कि तुम्हें इसका ज्ञान क्यों नहीं हुआ। पर यह भी हो सकता है कि तुम सिनेमा देखने जाते नहीं रहे, इसीलिए तुम्हें पता नहीं चला कि कब किस प्रकार सिनेमा के टिकटों में यह वृद्धि हुई। ख़ैर। अब तुम्हें मालूम होना चाहिए कि राजस्व के सिलसिले में तुम्हें कुछ करों का परिचय मिल चुका है। फिर भी कुछ कर अभी छूट ही गये हैं, जिनके सम्बन्ध में तुम अबोध हो। वे कर हैं—१—मनोरंजन-कर, २—व्यापार-कर, ३—मकान-कर, ४—यात्री-कर, ५—हैसियत-कर, ६—विवाह-कर इत्यादि। इन करों में पहला जो मनोरंजन-कर है, वही तुम्हें कल सिनेमा में अलग से देना पड़ा है। वह चार आने वाले टिकट पर दो पैसा, छै आने पर एक आना, फिर बारह आने और एक रुपये पर दो आना लगता है।

आश्चर्य्य के साथ मोहन बोला—अच्छा, यह कर ख़ूब रहा! इसका मतलब तो यह हुआ कि सरकार हमारे मनोरंजन के साधनों से भी आमदनी करना चाहती है। लेकिन चाचा, जिस किसी दिमाग़ की यह उपज होगी, वह रहा बड़ा चालाक होगा। देखिये न, जब वीरेश्वर ने आठ आने के बाद एक आना पैसा माँगा, तो मैंने तुरन्त दे दिया। तात्पर्य्य यह कि इस टैक्स की वसूलयाबी होती बड़े धूम के साथ है। किसी को देते समय खलता नहीं; और इनकार तो कोई कर ही नहीं सकता।

बिहारी—कर का पहला उद्देश्य ही यह है कि कर-दाता उसे ख़ुशी से दे। उसका देना उसको किसी प्रकार खले नहीं।

मोहन—अच्छा, तो फिर अन्य करों के सम्बन्ध में भी अब मुझे सभी ज्ञातव्य बातें बतला दीजिये।

बिहारी ने कहा—व्यापार-कर के दो भाग हैं—एक तो सेल्स-टैक्स और दूसरा आक्ट्राई अर्थात् चुंगी। सेल्स-टैक्स बिक्री पर लगाया जाता है। हमारे देश में इसका चलन नहीं है। रह गयी चुंगी। सो यह कर सभी करों में निकृष्ट माना जाता है। इसमें गुण एक नहीं, पर दोषों का यह भण्डार है। एक तो यह जीवन-रक्षक-पदार्थों पर भी लिया जाता है, जिसका भार उन लोगों पर विशेष पड़ता है, जो बिचारे ग़रीब होते हैं। दूसरे यह कर के इस (प्रथम) सिद्धान्त के सर्वथा प्रतिकूल है कि देनेवाला उसे प्रसन्नता-पूर्वक दे। इसके देने में दाता को कष्ट तो होता ही है, असुविधा भी कम नहीं होती। इससे बचने की चेष्टा प्रायः सभी लोग करते हैं। नदी, पुल अथवा रेल-यात्रा में स्टेशन पार करते ही लोग जब आगे बढ़ने और अपने ठिकाने लगने की जल्दी में रहते हैं, ठीक उसी क्षण यह कर वसूल किया जाता है। इसीलिए प्रायः लोग इससे बचते हैं। घूस भी इसमें ख़ूब चलती है। चुंगीवाले को न देकर लोग कुली को दो-चार पैसे देकर अप्रचलित रास्तों से निकलने की चेष्टा करते हैं। इसकी वसूलयाबी में अन्य करों की अपेक्षा ख़र्च भी अधिक पड़ता है। एक ही बात इसके पक्ष में उचित और मान्य हो सकती है कि यह म्युनिसिपल-बोर्ड की आय का मुख्य साधन है और इससे उसे अच्छी आमदनी हो जाती है।

मोहन—अच्छा चाचाजी, क्या इस कर में कोई सुधार सम्भव नहीं है?

बिहारी—क्यों नहीं है ? इसके बदले में टरमिनल-टैक्स हो सकता है। उसमें रेल से जो माल आये उसे रेलवाले वज़न के हिसाब से, भाड़े के साथ, ले लिया करें और गाड़ीवाले फ़ी गाड़ी के हिसाब से और बोझावाले फ़ी बोझा के हिसाब से दे दिया करें। किन्तु है यह कर भी दोष-पूर्ण; क्योंकि यह जीवन-रक्षक-पदार्थों की उस मात्रा पर भी लग सकेगा, जो सम्भव है, यात्रा की अवधि में ही व्यवहार में आकर समाप्त हो जायँ। मथुरा में तो एक विचित्र बात मैंने पायी। आगरे से टोपी लिये हुए मैं मथुरा जा रहा था। रास्ते में, लारी पर मुझे मालूम हुआ कि अगर इस टोपी का डब्बा अलग करके मैं इसे सिर पर लगा लूँ, तब तो चुङ्गी न लगेगी, पर अगर हाथ में और इसी रूप में लिए रहूँगा, तो इस पर चुंगी मुझे देनी पड़ जायगी !

मोहन—अब आया मकान-कर का नम्बर।

बिहारी—यह कर भी म्युनिसिपल-बोर्ड लेता है। यों तो यह कर बुरा नहीं है, पर इसकी दरें वर्द्धमान होनी चाहिए। अकसर देखने में आता है कि लोग इसमें कमी कराने के लिए रिशवत देते हैं। इसका परिणाम उन लोगों के लिए अहितकर होता है, जो ग़रीब होते हैं और रिशवत नहीं दे सकते। इसके साथ ही एक और कर होता है, वाटर-टैक्स। यह उन मकानों पर लगता है, जिनमें नल लगा रहता है।

मोहन—अच्छा चाचा, यह यात्री-कर क्या बला है ? मुझे तो अभी आपसे ही यह मालूम हो रहा है कि यात्रियों पर भी कोई कर लगता है।

बिहारी—अँगरेज़ी में यात्री-कर को पिलग्रिम-टैक्स कहते हैं। यह उन पर लगाया जाता है जो किसी एक स्थान से दूसरे तीर्थ-स्थान की यात्रा के लिए जाते हैं। इस टैक्स को रेलवे-कम्पनियाँ टिकट के ज़रिये से वसूल करके उस शहर की म्युनिसिपैलिटी को दे देती हैं, जहाँ का टिकट यात्री लेता है। यह भी इतने अप्रत्यक्ष रूप से लिया जाता है कि यात्रियों को पता तक नहीं लगता कि उनसे कितना लिया गया है। किन्तु फिर भी उदाहरणवत् इतना जान लो कि किसी भी स्टेशन से इलाहाबाद के लिए जो टिकट दिये जाते हैं, उन पर पहले दर्जे पर ।=), दूसरे दर्जे पर ≡), इंटर (ड्योढ़े) पर –)॥ तथा तीसरे दर्जे पर –) लगता है।

अब दो कर और रह गये। १—हैसियत-कर और २—विवाह-कर। हैसियत कर हाउस-टैक्स के बदले में लगता है। अर्थात् अगर हाउस-टैक्स लिया जाता है तो हैसियत-कर नहीं लिया जाता और अगर हैसियत-कर लिया जाता है तो हाउस-टैक्स नहीं लिया जाता। इसकी दरें भी वर्द्धमान रहती हैं। पर बहुत करके यह कर डिस्ट्रिक्टबोर्ड लगाते हैं, जहाँ गाँवों के मकान का मूल्य उतना अधिक नहीं होता, जितना नगरों के मकानों का।

अब विवाह-कर का नम्बर है। बिहारी ने मुसकराते हुए कहा—विवाह-कर हमारे देश में अभी तक प्रचलित नहीं हुआ, पर मैं सोचता हूँ, है यह भी मनोरंजन-कर की भाँति ही बहुत सुगमता से वसूल होने वाला है। विवाह के समय अगर तुमसे यह कर दस रुपये के रूप में वसूल किया जाय, तो मेरा ख़्याल है, तुम इसे सहर्ष अदा

कर दोगे।

मोहन लजा गया। बोला—मेरी बात जाने दीजिये। लेकिन इसके सम्बन्ध में मैं इस समय यह अवश्य कहना चाहूँगा कि इसकी दरें यदि दहेज की रक़म के अनुसार वर्द्धमान रक्खी जायँ तो अच्छा हो।

बिहारी ने कहा—हाँ, यह तुम ठीक कहते हो।

यह वार्तालाप हो ही रहा था कि मोहन ने सुना दरवाज़े पर पोस्ट-मैन खड़ा हुआ कह रहा है—चिट्ठी ले जाओ। मोहन उसी आवाज़ पर बाहर दौड़ गया। देखा, कई पत्र हैं, जिनमें एक म्युनिसिपलबोर्ड का भी है। ये चिट्ठियाँ जब मोहन ने अन्दर जाकर चाचा को दीं, तो बिहारी ने कहा—देखो, यह पत्र हाउस-टैक्स अर्थात् मकान-कर सम्बन्धी है। जान पड़ता है, मकान-मालिक लालाजी ने अभी तक इसे अदा नहीं किया। अच्छा, अभी खाना खाकर उनके पास जाना और इसे दिखाकर कहना कि अगर उन्हें देने में असुविधा हो, तो मेरा नाम लेकर कहना कि उन्होंने कहा है, मैं दे दूं। फिर किराये में कट जायगा। बात यह है कि लालाजी के घर विवाह है, बेचारे ख़र्चे के मारे परेशान होंगे।

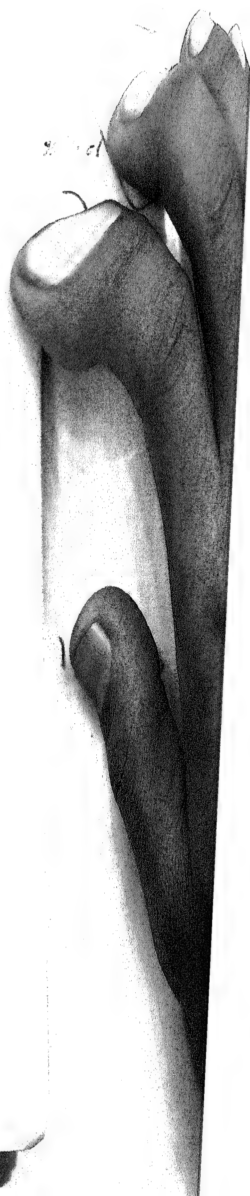
राजाराम ने अनुभव किया, चाचा का हृदय इस सम्बन्ध में कितना उदार है!



सोलहवाँ अध्याय

सरकारी ऋण

"आजकल चाचाजी देश-भर में सरकार को युद्ध में सहायता देने के लिए वार-बाँड, इंडिया-डिफेंस-लोन आदि की बड़ी चर्चा रहती है। इसका सीधा अर्थ मेरी राय में यह है कि भारत की सरकार के ख़ज़ाने में रुपये की कमी आ गयी है। मुझसे देहात के एक आदमी ने कहा भी था कि क्या सरकार का दिवाला निकल गया है, जो वह जनता से क़र्ज़ लेने की चेष्टा कर रही है! थोड़ी देर के लिए हम यह माने लेते हैं कि वह आदमी अशिक्षित था और उसे इस बात का ज्ञान नहीं हो सकता है कि युद्ध में ब्रिटिश सरकार को नित्य कितना रुपया ख़र्च करना पड़ता है। किन्तु फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि जब भारत की साधारण जनता बिल्कुल ही ग़रीब है, तब उससे यह आशा रखना कि वह कुछ क़र्ज़ सरकार को दे सकेगी अथवा यह सोचना कि उससे ब्रिटिश सरकार को वास्तव में



कुछ भी सहायता मिल सकेगी, निरर्थक ही है। सरकार के लिए यह बात कम-से-कम यहाँ की ग्रामीण जनता की दृष्टि से तो कभी सम्मान-कारक नहीं हो सकती। आपकी इस सम्बन्ध में क्या राय है, यह मैं स्पष्ट रूप से जानना चाहता हूँ।"

मोहन जब अपनी बातें कह चुका, तो बिहारी ने उत्तर दिया—इसका तात्पर्य्य यह है कि तुम यह भूल गये कि अर्थशास्त्र की दृष्टि से व्यक्तियों के लिए ऋण लेना तो बुरा समझा जाता है, परन्तु सरकार के लिए—कुछ विशेष दशाओं में—ऋण लेना बुरा नहीं, बल्कि आवश्यक माना जाता है।

आश्चर्य्य के साथ मोहन ने कहा—आप कहते क्या हैं! जो सरकार ऋण लेकर अपना काम चलाती है, मैं तो उसे बहुत ही निकृष्ट समझता हूँ। इससे अधिक असफलता, अविवेकशीलता, अनुत्तरदायित्व और मैं तो कहना चाहता हूँ कि किसी हद तक अकर्मण्यता भी और क्या हो सकती है कि सरकार को प्रजा से ऋण लेना पड़े।

बिहारी ने ऊपर से मुसकराते हुए, किन्तु अन्तर से अत्यन्त गम्भीरता-पूर्वक कहा—बहुत बहको मत, पहले समझ लो कि मैं क्या कहता हूँ, तब आगे बढ़ो।

मोहन कुछ शान्त और स्थिर होकर बोला—अच्छा, बतलाइये। मैं सुनता हूँ।

बिहारी—एक तो यह पुराना दृष्टिकोण है कि सरकार का प्रजा से ऋण लेना उसके लिए सम्मानकारक नहीं होता। निस्सन्देह

पुरातनकाल में किसी राजा का प्रजा से ऋण लेना अच्छा नहीं समझा जाता था। वह ऐसा युग था कि वे लोग राज्य-प्रबन्ध में उतना ही व्यय करते थे, जितना आय के अनुसार, साधारण रूप से, वे कर सकते थे। यह भी मैं मानने को तैयार हूँ कि वे आपत्ति-काल के लिए पर्याप्त धन संचित रखते थे। परन्तु उस समय न तो सभ्यता का इतना विकास हुआ था, न राजा प्रजा का ऐसा निकट सम्बन्ध हो सकता था। राजा यदि उच्च शिक्षित, न्याय परायण, वीर और राज्य-प्रबन्ध में आदर्श रहता था, तब तो इतना विवेकशील होना उसके लिए सर्वथा स्वाभाविक ही था कि वह आपत्ति-काल के लिए सब तरह से तैयार रह सके। किन्तु यदि वह कुछ कारणों से अपने राज्य-प्रबन्ध में असफल रहा, तब तो उससे इस प्रकार की आशा हम नहीं कर सकते थे। आज की स्थिति इस युग से बहुत आगे बढ़ आयी है। अब राज्य के हाथ में इतनी शक्ति रखना ही हमको स्वीकार न होगा कि वह भूल से भी देश को आपत्ति में डाल सके। अब राज्य राजा की निजी सम्पत्ति न रहकर वह सम्पूर्ण राज्य की मान ली गयी है। इसीलिए अब यह भी मान लिया गया है कि विशेष स्थितियों में किसी भी राज्य की सरकार के लिए ऋण लेना बुरा नहीं, बल्कि आवश्यक होता है।

मोहन—वे स्थितियाँ कौन-सी हैं?

बिहारी—(१) उन कार्य्यों पर सरकार ऋण ले सकती है, जिनसे अन्य ख़र्चे निकालकर इतनी आमदनी की आशा हो कि उस-पर ब्याज सुविधा-पूर्वक निकल सके। (२) उन सार्वजनिक हित-

सम्बन्धी कार्यों पर वह ऋण ले सकती है, जिनसे उतनी अधिक आमदनी चाहे न भी हो कि ख़र्चे पूरे हो जाने के पश्चात् ब्याज की रक़म पूरी मिल सके; परन्तु जनता का हित तो उससे अधिकाधिक होता ही हो। जैसे—नहर, उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन और शिक्षा-प्रसार। (३) आकस्मिक दुर्घटना के समय, युद्ध के समय, किसी भी कारण से वस्तुओं के मूल्य में असाधारण वृद्धि के समय, बाढ़, दुर्भिक्ष अथवा भूकम्प के समय।

मोहन—अच्छा जब यह निश्चय हो जाय कि सरकार को ऋण लेना ही है, तब प्रश्न यह उठता है कि वह किससे लिया जाय।

बिहारी—बेशक। यह प्रश्न तो उठना ही चाहिए। पर इसका उत्तर सिद्धान्त रूप में तो यही हो सकता है कि ऋण सरकार को कहीं से भी ले लेना चाहिए, जहाँ से वह सस्ते-से-सस्ते सूद पर मिल सके। परन्तु इसके लिए दो शर्तें भी लगा दी गयी हैं। पहली यह कि ऋण किसी भी देश की सरकार को वहीं से लेना चाहिये, जहाँ से ऋण लेनेवाले पर किसी प्रकार का राजनैतिक प्रभाव न पड़ सके। बात यह है कि ऋण-दाता का राजनैतिक प्रभाव पड़ने से ऋण लेनेवाले देश की जीवनी शक्ति इतनी दुर्बल पड़ जाती है कि व्यवसाय के विकास और देश की रक्षा से सम्बन्ध रखनेवाले राजनैतिक मामलों में वह अपनी शक्ति पर विश्वास की दृढ़ता खो देता है। दूसरी शर्त यह है कि जहाँ तक सम्भव हो, देश के अन्दर ही क़र्ज़ लेने का प्रयत्न किया जाय। बांड, सर्टिफ़िकेट और सिक्योरिटी आदि अनेक प्रकारों से यह ऋण लिया जा सकता है। (हमारी सरकार भी इस

रीति से ऋण ले रही है।) परन्तु ऋण लेने से पूर्व यह देख लेना आवश्यक होता है कि निम्नलिखित शर्तें पूर्ण हो रही हैं या नहीं—

(१) ख़र्चे में जितनी भी कमी की जा सकती है वह की जा चुकी है या नहीं। अगर नहीं की गयी है, तो तुरन्त करके देख लिया जाय। सम्भव है, ख़र्चों की कमी से ऐसी बचत हो जाय कि ऋण लिये बिना काम चल जाय।

(२) अधिक-से-अधिक जितना भी कर लगाया जा सकता हो, वह लगाया गया है या नहीं। अगर न लगाया गया हो, तो तुरन्त लगा कर देख लिया जाय। सम्भव है कि कर बढ़ा देने से ही इतनी आमदनी बढ़ जाय कि ऋण लेने की आवश्यकता न रहे।

मोहन—अच्छा, अब आप यह बतलाइये कि ऋण के चुकाने के सम्बन्ध में सरकार क्या व्यवस्था करती है?

बिहारी—इस सम्बन्ध में सबसे अच्छा तरीक़ा तो यह है कि ऋण-निवारक एक फंड ही अलग रक्खा जाय। इस फंड में जो रुपया जमा हो, उसी से वह चुकता भी होता रहे। पर चुकता करने की दृष्टि से ऋण दो प्रकार से लिया जाता है। एक तो मियादी, दूसरा ग़ैर-मियादी। मियादी के लिए उसे निश्चित अवधि तक चुकता करने की शर्त रहती है। ग़ैर-मियादी के लिए चुकता करना उतना आवश्यक नहीं रहता, जितना एक निश्चित तिथि पर उसके ब्याज-मात्र देने का प्रबन्ध रखना।

मोहन—परन्तु यदि किसी सरकार की आर्थिक स्थिति इतनी बिगड़ जाय कि वह मियादी ऋण अदा न कर सके, तब उसे क्या करना होता है?

बिहारी—ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर नया ऋण लेकर पुराना चुकाना पड़ता है। कभी-कभी सरकार ऐसा भी करती है कि ऋण चुकाना अस्वीकार कर देती है।

तब आश्चर्य्य के साथ मोहन बोल उठा—अच्छा, ऐसा भी होता है!

बिहारी—सन् १९१४ ई० के पिछले योरपीय महायुद्ध के बाद जब रूस में नयी सरकार क़ायम हुई तो उसने पुरानी सरकार द्वारा लिया हुआ सब ऋण देना अस्वीकार कर दिया। अर्थशास्त्र की दृष्टि से इस तरह का आचरण सर्वथा निंद्य माना जाता है। किसी भी देश के लिए ऋण चुकता करने से इनकार कर देना अप्रत्यक्ष रूप से युद्ध केलिए निमंत्रण देने के समान संकटापन्न होता है। इसके सिवा यह तो स्पष्ट रूप से सरासर बेईमानी है। इसका दुष्परिणाम विश्व-भर की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के लिए विषैला हो जाता है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का आर्थिक मामले में विश्वास नहीं करता। यहाँ तक कि जो राष्ट्र ईमानदार होते हैं, संकट पड़ने पर उनको भी आर्थिक सहायता मिलने में कठिनाई उपस्थित हो जाती है, और इस प्रकार जो राष्ट्र विश्व की सहानुभूति के पात्र होते हैं, वे भी उससे वंचित हो जाते हैं।

मोहन—जब कोई राष्ट्र किसी देश को ऋण देता होगा तब उसके सम्बन्ध में वह यह भी देख लेता होगा कि उस पर किसी अन्य देश का ऋण-भार तो नहीं है।

बिहारी—इस मामले में व्यक्ति और राष्ट्र की स्थिति समान होती

है। जैसे व्यक्ति को उस समय ऋण मिलना कठिन हो जाता है, जब वह ऋण-भार से बुरी तरह से ग्रस्त होता है; वैसे ही उस राष्ट्र को भी ऋण देने से वे राष्ट्र आनाकानी करते हैं, जो अत्यधिक ऋण-भार से डूबा हुआ रहता है।

मोहन—भारत-सरकार पर तो किसी का ऋण होगा नहीं चाचा ?

बिहारी—क्यों नहीं है ? भारत पर इस समय तक लगभग तेरह-सौ करोड़ रुपयों का ऋण है। इसमें एक हज़ार करोड़ का ऋण तो ऐसा है, जिसके बदले में किसी-न-किसी प्रकार की सम्पत्ति इस देश में विद्यमान भी है, साढ़े सात सौ करोड़ रुपये भारतीय रेलों में लगे हुए हैं। ढाई-सौ करोड़ रुपये की रक़म नहरों आदि अन्य व्यावसायिक कार्यों में लगी हुई है, कुछ तो प्रान्तों में, कुछ देशी राज्यों में। कुछ नक़द भी सुरक्षित है। परन्तु इस ऋण में तीन सौ करोड़ रुपये तो इस प्रकार के हैं, जिनके बदले में हमारे देश में कोई सम्पत्ति नहीं है। और जिस ऋण के बदले में कोई सम्पत्ति न हो, वह ऋण अर्थशास्त्र की दृष्टि से अनुत्पादक होता है। संपूर्ण ऋण का अधिकांश भाग इंगलैंड से लिया गया है।

मोहन—किन्तु चाचा, इंगलैंड का भारत पर इतना ऋण हो कैसे गया ? ऐसे ग़रीब देश पर इतना भारी बोझ ! मुझे तो यह सुनकर एक धक्का-सा लगा।

बिहारी—इस ऋण का पूरा इतिहास बतलाना तो इस समय कठिन है। संक्षेप में इतना ही इस समय जान लेना काफ़ी होगा कि भारत जब से अँगरेज़ी शासन के अधीन आया—अर्थात् अठारवीं

शताब्दी में—तभी से इस ऋण का जन्म हुआ। उस समय पहले यहाँ ईस्ट-इंडिया कम्पनी का आधिपत्य था। वह इङ्गलैंड के सम्राट् की प्रतिनिधि थी। उसने यहाँ पर फ्रांस के प्रतिनिधियों तथा भारत के देशी राजाओं से लड़ाइयाँ लड़ीं। इन लड़ाइयों में उसने जो अन्धाधुंध ख़र्च भारतीय नरेशों को दमन करने में किया, उससे उस पर ऋण हो गया। बंगाल की दीवानी पा लेने पर सन् १७६५ ई० में, इस ऋण का भार उसने उसी प्रान्त की आय पर डाल दिया। इसी शक्ति से उसने पहले मैसूर राज्य प्राप्त किया, तदनन्तर मराठा राज्य। सन् १८५७ ई० में राज्य-क्रान्ति हुई। इस अवसर पर भारत का दमन करने में कम्पनी ने जो ख़र्च किया, उसका भार भी भारत पर ही पड़ा। इसके बाद जब भारत का शासन ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के हाथ से निकलकर ब्रिटिश-पार्लमेंट के हाथ में आया, तब कम्पनी के ऋण और दायित्व का भार पार्लमेंट ने अपने ऊपर ले लिया। बाद में भारत में ब्रिटिश-शासन का जैसे-जैसे प्रसार होता है और नयी-नयी योजनाएँ बनती हैं, वैसे-ही-वैसे उसका ख़र्च भी बढ़ता रहता है। अर्थ-सचिव के बनाये बजट के अनुसार यदि आय कम हुई, व्यय अधिक, तो उसका भार भी भारत ही पर पड़ता है। फिर कर बढ़ाये जाते हैं। बचत में भी जो कमी हुई, तो थोड़ी-बहुत हो गयी। पर उससे उत्पादक-ऋण चुकता न करके अनुत्पादक-ऋण चुकाया गया। पिछले महायुद्ध में भारत-सरकार ने ब्रिटिश-सरकार को डेढ़-सौ करोड़ रुपया दान किया था। यह दान भी अनुत्पादक-ऋण को बढ़ाने में सहायक हुआ है।

मोहन—राज्य-प्रबन्ध में यदि कुछ ऋण हो जाय, तो उतना बुरा नहीं, किन्तु यह तो उचित नहीं है कि ब्रिटेन लड़ाइयाँ लड़े अपने साम्राज्य-विस्तार के लिए और उसका भार डाला जाय भारत पर।

बिहारी—हमारे अधिकांश एशियाई युद्ध जो साम्राज्य की सीमा के बाहर हुए हैं, भारत-सरकार के जन-धन ख़र्च करके लड़े गये हैं। इनमें कुछ तो बिल्कुल ब्रिटिशहित के ही लिये लड़े गये और कुछ का यदि भारत से सम्बन्ध रहा भी, तो बहुत दूर का। वे लड़े गये भारत-सरकार द्वारा और ब्रिटिश-मंत्री के आज्ञानुसार। स्पष्ट है कि ब्रिटिश-सरकार ही उसके परिणाम के लिए जिम्मेदार है।

मोहन—सचमुच चाचाजी, इस तरह का ऋण तो भारत पर कभी डालना न चाहिए।

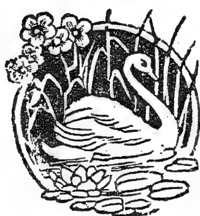
बिहारी—काँग्रेस ने भी इस सरकारी ऋण की जांच की थी। उसने सन् १९३१ ई० में एक जांच-कमेटी नियुक्त की, जिसने अंक देते हुए यह फ़ैसला दिया कि इस ऋण (उस समय ग्यारह सौ करोड़) का अधिकांश भाग, अर्थात् ७२९ करोड़ केवल ब्रिटिश-साम्राज्य के निजी लाभ और उसकी स्वार्थ-रक्षा के लिए क़र्ज़ लिये गये हैं। इससे भारत के लाभ का कोई सम्बन्ध नहीं रहा, अतएव यह रक़म इंगलैंड को अदा करनी चाहिए।

तब नि:श्वास लेते हुए मोहन कहने लगा—सच्ची बात तो यह है चाचा कि अपने देश की सरकार जब तक नहीं होती, तब तक सरकार यह नीति बराबर जारी रक्खेगी।

बिहारी—हाँ, फिर यह तो है ही। इसके सिवा अर्थशास्त्र में हम केवल सिद्धान्तों की मीमांसा कर सकते हैं। राजनैतिक बातें राजनीति शास्त्र में आनी चाहिए। यहाँ उसके लिए अवसर कहाँ है।

मोहन बोल उठा—इसके सिवा इस समय इंगलैंड स्वतः संकट में है। दूर क्यों जाऊँ, हमारे प्रिंसपल साहब भी अपने कालेज में एक ख़ासी अच्छी रक़म युद्ध के सहायतार्थ इकट्ठी कर रहे हैं। किया क्या जाय!

बिहारी—प्रश्न केवल इंगलैंड का है भी नहीं। भारत की अपनी रक्षा का भी तो है। और अर्थशास्त्र की दृष्टि से हमें इसका समर्थन करना ही पड़ेगा।



सत्रहवाँ अध्याय

आर्थिक स्वराज्य

मोहन और वीरेश्वर टहलते हुए जार्जटाउन से दारागंज की ओर आ रहे थे। इस वर्ष वीरेश्वर विश्व-विद्यालय में प्रवेश कर रहा है। उसके पिता एक आफ़िस में क्लर्क हैं। घर में कई छोटे भ्राता तथा बहनें भी हैं। सब मिलाकर पाँच भाई-बहन तो ऐसे हैं, जो स्कूल कालेजों में पढ़ रहे हैं। परिवार काफ़ी बड़ा है और इसलिए वीरेश्वर के पिता ने कह दिया था कि मैं अब तुम्हारे पढ़ने का ख़र्च चला नहीं सकता। अगर तुम्हें पढ़ना है, तो उसके लिए आय का प्रबन्ध भी तुम्हें ही करना पड़ेगा। वीरेश्वर कई दिनों से इसी चिन्ता में है कि किस तरह इतना रुपया जुटाये कि विश्वविद्यालय में प्रवेश कर सके। शुल्क तो देना ही पड़ेगा। पुस्तकों के लिए भी तो काफ़ी रुपया चाहिये। फिलहाल पचास रुपये का प्रबन्ध हो जाता, तो किसी तरह इस महीने का तो काम चलता।

यकायक मौन देखकर मोहन ने पूछा—आज तुम इतने उदास क्यों हो वीरेश्वर भाई ?

वीरेश्वर ने उत्तर दिया—क्या बताऊँ मोहन, इस समय मुसीबतों का पहाड़ मेरे सामने है।

मोहन ने गम्भीरता-पूर्वक पूछा—आख़िर कुछ तो कहो। सम्भव है, विचार-परिवर्तन से कोई रास्ता ही निकल आये।

तब वीरेश्वर ने अपनी परिस्थिति उसके सामने खुले तौर पर रख दी। परिस्थिति की भीषणता की ओर लक्ष करते हुए मोहन ने कहा—पर यह स्थिति तो तुमको पहले से मालूम थी। अतएव इसकी व्यवस्था भी तुमको पहले से ही करनी चाहिए थी। अब आज जब व्यय का भार यकायक सिर पर आ गया है, तब तुरन्त आय कैसे हो सकती है ? ऋण लेने के सिवा मुझे तो इस समय कोई मार्ग नहीं देख पड़ता।

"किन्तु एक विद्यार्थी को ऋण देने भी कौन लगा ?" वीरेश्वर बोल उठा।

"लेकिन तुम्हारे बाबू भी अजीब आदमी हैं। तुम्हारी पढ़ाई का प्रबन्ध तक नहीं कर सकते !" मोहन ने चट से कह डाला।

वीरेश्वर विचारा सोचता रह गया। क्या वह अपने पिता को इसके लिए दोष दे ? लेकिन किसी प्रकार वह उन्हें दोषी ठहरा नहीं सकता। तब उसने कहा—तुम चाहे जो भी कह डालो मोहन, लेकिन कोई भी होता, तो उनकी-सी परिस्थिति में मुझे यही जवाब मिलता। उन्होंने इण्टर तक जो पढ़ा दिया, तुम इसे थोड़ा समझते हो !

इस पर मोहन कुछ उग्र हो पड़ा। बोला—अच्छे रहे। यह तो बिल्कुल वैसी ही बात हुई जैसे ब्रिटेन कहे कि हिन्दुस्तान को अपनी रक्षा का प्रबन्ध अपने आप करना चाहिए।

इस पर वीरेश्वर ने उत्तर दिया—चाहे हमारा देश राजनीति की दृष्टि से उतना ही पराधीन होता, जितना इस समय है; किन्तु यदि उसे आर्थिक स्वराज्य प्राप्त होता तो अपनी रक्षा करने में वह पूर्ण समर्थ होता।

मोहन—आर्थिक स्वराज्य से आपका क्या मतलब है ? अर्थशास्त्र की दृष्टि से तो देश के आय-व्यय पर प्रजा-प्रतिनिधियों के नियन्त्रण को ही मैं आर्थिक-स्वराज्य मानता हूँ।

वीरेश्वर—आय-व्यय ही पर क्यों, यह कहो कि राजस्व-नीति पर प्रजा-प्रतिनिधियों का नियंत्रण आर्थिक-स्वराज्य है।

मोहन—किन्तु आर्थिक-स्वराज्य प्राप्त होने पर भी हमारा देश पराधीन ही बना रहता, यह बात कुछ समझ में नहीं आती। मैं तो आर्थिक-स्वराज्य को ही वास्तविक स्वराज्य मानता हूँ।

वीरेश्वर—दोनों ही स्थितियाँ अन्योन्याश्रित हैं। बिना आर्थिक स्वराज्य के स्वाधीनता सम्भव नहीं है और बिना स्वाधीनता के आर्थिक स्वराज्य असम्भव है। भारतवर्ष ग्रेट-ब्रिटेन के अन्तर्गत एक अर्धस्वतंत्र राष्ट्र है। इसलिए ग्रेट-ब्रिटेन यहाँ की राजस्व-नीति के संबंध में अपने सम्पूर्ण साम्राज्य के हिताहित का विचार रखती है। अगर भारत-सरकार अपनी राजस्व-नीति के लिए यहाँ के प्रजा-प्रतिनिधियों के सामने उत्तरदायी हो, तो इस देश की सारी राजनीति भारत को

स्वतंत्र राष्ट्र का रूप देने में पूर्ण सहायक हो जायगी।

मोहन—भारत के व्यापार-वाणिज्य के सम्बन्ध में सरकार आयात-निर्यात करों का निर्धारण करते हुए यह बात ध्यान में रखती है कि भारतवर्ष को चाहे लाभ हो, चाहे न हो; पर इंगलैंड के कल-कारख़ाने वालों को लाभ अवश्य हो। लाभ अगर न हो, तो हानि तो किसी प्रकार न हो। और यही नीति कभी-कभी भारत के हितों के विपक्ष में जाती है।

वीरेश्वर—यहाँ के सिविल और मिलिटरी पदों पर जो अंगरेज़ नियुक्त किये जाते हैं, उनके वेतन और भत्ता—और बाद में पेंशन-के रूप में—इस देश का कितना धन बाहर चला जाता है! अगर वे अधिकारी हमारे देश के हों, तो वे यहीं रहें और उनके स्वार्थ इस देश के स्वार्थों के साथ सम्बद्ध हो जायँ। उस दशा में वे वेतन भी कम लें और रिटायर हो जाने पर भी प्रकारान्तर से हमारे देश को लाभ ही पहुँचायें।

बातें करते हुए मोहन अपने घर आ पहुँचा। अब इस बहस में बिहारी भी सम्मिलित हो गया और साथ ही प्रो० गुप्ता भी। गुप्ता नागरिक-शास्त्र और राजनीति के पंडित हैं।

बिहारी ने कहा—प्रतिवर्ष भारत-सरकार ब्रिटेन को एक बड़ी रक़म 'होम चार्जेज़' के नाम से भेजती है। यद्यपि उसका हिसाब प्रकाशित किया जाता है; फिर भी कौन रक़म भारत के नाम वास्तव में पड़नी चाहिए, कौन नहीं, यह बात तो स्पष्ट रूप से उस हिसाब से झलक ही जाती है। पायः लोग कहते हैं, भारत अर्ध स्वाधीन देश है। पर आर्थिकस्वराज्य की दृष्टि से तो मैं इसे पूर्ण पराधीन मानता हूँ।

आपको मालूम होना चाहिए कि यहाँ के प्रजा-प्रतिनिधियों को इतना भी अधिकार नहीं है कि वे भारत-सरकार के आय-व्यय में यथेष्ट परिवर्तन कर सकें। केंद्रीय बजट का लगभग ८५ प्रतिशत रुपया ऐसी मद्दों के लिए निश्चित रहता है (सेना, रेल, सूद, उच्च पदाधिकारियों के वेतन, भत्ते तथा अन्य अनेक प्रकार के ख़र्चें में) जिस पर व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के मत की आवश्यकता ही नहीं रहती। रह गया शेष १५ प्रतिशत, सो उस पर भी वायसराय को यह विशेषाधिकार प्राप्त है कि वह व्यवस्थापिका सभा द्वारा निश्चित मन्तव्य को भी चाहे तो रद्द कर दे। रह गया प्रान्तीय स्वराज्य, सो उसका थोथा स्वरूप तो इसी बात से प्रकट है कि अनेक उच्च-पदाधिकारियों के वेतन आदि पर प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाएँ अपना कोई अन्तिम अधिकार नहीं रखतीं। विदेशी माल यहाँ आता है, इसके सिवा यहाँ कुछ विदेशी कम्पनियाँ भी व्यापार करती हैं। हम विदेशी माल पर इच्छानुसार कर लगा कर, अपने देश में उसकी खपत बन्द कर, स्वदेशी उद्योग धन्धों को पूर्ण प्रोत्साहन दे कहाँ सकते हैं ? 'गोल्ड-स्टैण्डर्ड-रिज़र्व, की करोड़ों रुपये की रक़म भारत-सचिव के पास जमा रखने के लिए रह सकती है और उससे इंगलैंड के बैंक और व्यापारी लाभ उठाने का अवसर पा सकते हैं, किन्तु भारत उसके उपभोग आदि किसी प्रकार का लाभ उठाने से वंचित ही रक्खा जाता है। केन्द्रीय सरकार को अधिकार है कि वह जब चाहे तब और जितना चाहे उतना ऋण, चाहे जिस काम के लिए, इंगलैंड से लेकर भारत के ऋण-खाते में डाल दे; दूसरे देशों

से, इंगलैंड की अपेक्षा, अधिक अनुकूल शर्तों पर ऋण मिलना भले ही सम्भव हो। फिर जो संस्थाएँ भारत को ऋण देकर उससे सूद वसूल करती हैं, उन पर आय-कर लगाने का हमें कोई अधिकार नहीं रहता।

गुप्ता—बात यह है कि भारतीय अर्थशास्त्र की दृष्टि से जो नीति इस देश की सम्पन्नता के लिए हितकर है, वही ग्रेट-ब्रिटेन के अधिनायकों की राजनीतिक दृष्टि से उनके लिए अहितकर। मुख्य भेद यह है। आज ब्रिटेन भारतवर्ष को आर्थिक स्वराज्य दे दे, तो कल ही वह भारतवर्ष में अपना आधिपत्य खो बैठेगी। किन्तु वर्तमान परिस्थिति में डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड और म्युनिसिपल-बोर्डों के अन्तर्गत जो स्वाधीनता हमें प्राप्त है, उसका पूरा लाभ भी हम कहाँ उठा पाते हैं। हम मानते हैं कि कठिनाईयों के पहाड़ हमारे सामने हैं, किन्तु राष्ट्र का आन्तरिक जागरण क्या हम कर नहीं सकते? मादक-द्रव्य-निषेध, कुरीति-निवारण, शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा, घरेलू उद्योग-धन्धों की वृद्धि, बेकारी-निवारण, सहकारी बैंकों और सहयोग-समितियों तथा कृषि-सुधार आदि के द्वारा अपने देश की आन्तरिक शक्ति को तो हम सुदृढ़ बना ही सकते हैं। राजनीतिक दृष्टि से पूर्ण स्वाधीनता के लिए लटके रहकर, बात-बात में उसी की दुहाई देते रहने से तो कोई लाभ नहीं देख पड़ता।

बिहारी—किन्तु मैं तो भारत के हित में ब्रिटेन का हित देखता हूँ। भारत अगर आज थोड़ा भी अधिक स्वाधीन होता, तो इस संकट के समय ब्रिटेन को भारत के लिए विशेष चिन्ता करने की

कोई बात न होती। भारत से उसकी मित्रता रहती और भारत आज उतना पंगु और असहाय न होता, जैसा आज है। फिर अर्थशास्त्र की दृष्टि तो यह है कि देश के राजस्व का नियंत्रण उस देश के प्रजा-प्रतिनिधियों के अधिकार में ही रहना चाहिए। हम से जो कर वसूल किये जाते हैं, हमें इतना अधिकार तो होना ही चाहिए कि हम अपने प्रतिनिधियों द्वारा उसे ठीक ढङ्ग से ख़र्च करने पर सरकार को विवश कर सकें। राज्य-शासन के लिए राजस्व अनिवार्य्य है। कौन इससे इनकार कर सकता है? किन्तु उसके वसूल करने का ढङ्ग उचित, उसके ख़र्च करने की व्यवस्था उपयुक्त और उसका मुख्य उद्देश्य देश की साधारण जनता का हित-सम्पादन होना चाहिए। अर्थशास्त्र की दृष्टि से हमें यह कहना ही पड़ेगा कि सेना, रेल, सूद और उच्च पदाधिकारियों पर आय का ८५ प्रतिशत उड़ा डालना और प्रान्तीय ख़र्चों पर भी गवर्नर का ही अन्तिम अधिकार रहना तुरन्त दूर होना चाहिए।

मोहन अभी तक चुप बैठा था। उसने कहा—मेरी समझ में नहीं आता कि अपने देश के आयात-निर्यात कर के सम्बन्ध में भारत के लिए हितकर नीति क्यों नहीं व्यवहार में लाई जाती? यह तो 'जिस पत्तल में खाना उसी में छेद करने' के समान निंद्य ही कहा जायगा।

वीरेश्वर बोला—अजीब तमाशा है। हमें अपने देश की मुद्रा, टकसाल और विनिमय की दरें निर्धारित करने का भी अधिकार न हो, उसका लाभ-कोष—बजाय हिन्दुस्तान के—रक्खा जाय इंगलैंड में!

मोहन—और ऋण लेने की आवश्यकता पड़े, तो हमें यह निर्धारित करने का अवसर तो मिलना चाहिए कि अमेरिका आदि देशों में से, कहाँ से, कम सूद तथा सुविधाजनक शर्तों पर रुपया मिल सकता है। आज जो तेरह सौ करोड़ रुपये का ऋण भारत पर लाद रक्खा गया है, काँग्रेस की जाँच-कमेटी के अनुसार ७२९ करोड़ रुपया अदा करने का भार तो इंगलैंड को अपने ऊपर ले लेना चाहिए।

गुप्ताजी—अच्छा, क्या आप कह सकते हैं कि अगर भारत इस समय कुछ अधिक स्वतन्त्र होता, तो वह अपनी रक्षा आप कर सकने में समर्थ होता?

बिहारी—आपको स्मरण होना चाहिए कि असहयोग-आन्दोलन में हज़ारों व्यक्ति जेल गये थे। यह वह युग था, जब देश आज की अपेक्षा बहुत अधिक अशिक्षित था। इस युद्ध को छिड़े हुए दो वर्ष से कुछ महीने कम रह गये हैं। क्या इस अवधि में भारत के अन्तर्गत पचास लाख सैनिकों की सेना भी ऐसी न होती, जो अवसर आने पर दुश्मन की सेना से लोहा ले सकती? फिर विध्वंसक वायुयानों, तोपों और टैंकों के संचालन, निर्माण, रिपेयरिंग और उपयोग की शिक्षा में हमारा देश क्योंकर पीछे रहता? आज तो स्थिति इतनी भयावह किन्तु हास्यास्पद है कि हमारे क्या ग्रामीण और क्या अर्धशिक्षित नागरिक बन्धुओं के लिए हवाई जहाज़ एक तमाशे की चीज़ बनी हुई है। राष्ट्र की पराधीनता, जड़ता और विवशता के इस नग्न रूप के आगे आपकी आँखें क्यों नहीं जातीं मिस्टर गुप्ता! आज तो हम किसी पड़ोसी राष्ट्र से सहायता

की भी आशा नहीं कर सकते। आज तो पग-पग पर संकट की यह स्थिति है कि जिसकी हम सहायता चाहें, भय है कि कहीं उसी के पंजे में हमारा देश न आ जाय! अन्य राष्ट्रों के साथ व्यापारिक संधि करने, युद्ध के लिए वैज्ञानिक शस्त्रास्त्र-निर्माण के आयोजन में उनसे सुविधा, निर्देशन और सहायता पाने में हम कितने पंगु, असहाय और वंचित हैं! विदेशों में अपने वाणिज्य-दूत, कमिश्नर आदि रखने की स्थिति से हम कितने दूर हैं! जिस देश की अस्सी प्रतिशत जनता दरिद्रता, अस्वास्थ्य, अशिक्षा और पेट-पूजा के अहर्निशि चिन्तन में मर-खप रही हो, वह देश आज के इस महा भयंकरयुद्ध में अपने प्रभु इंगलैण्ड की क्या सहायता कर सकता है? ऐसी दशा में सहायता के नाम पर जो कुछ हो रहा है, वह भारत जैसे विशाल देश की सामूहिक शक्ति का उपहास यदि प्रदर्शित करे, तो आश्चर्य नहीं। यद्यपि विवश होकर भी वह जो कुछ कर दे सज्जनता, मानवता और सदाशयता की दृष्टि से वह भी अतुलनीय ठहरेगा।

गुप्त – हाँ, आर्थिक स्वराज्य की आवश्यकता तो अपने देश को है ही। इससे कौन इनकार कर सकता है?

बिहारी—आर्थिक स्वराज्य हमें प्राप्त हो, तो हम क्या नहीं कर सकते? क्या हम अपने देश के चुने हुए शिक्षित नवयुवकों की एक ऐसी सेना नहीं बना सकते, जो आवश्यकता पड़ने पर जननी-जन्मभूमि की रक्षा के लिए अपना आत्मोत्सर्ग करने को हर घड़ी तैयार रहे? स्थायी सेना अधिक रखने की हमें क्या आवश्यकता होगी, जब सूचना-मात्र देने पर लक्ष-लक्ष भारतीय नागरिक बात-की-बात में सैन्य-संगठन में आबद्ध

होकर हमारी राष्ट्रीय ध्वजा फहराने लगेंगे। तब केंद्रीय कुल आय का आधा भाग केवल सेना पर ख़र्च करने की हमें आवश्यकता ही क्या होगी? और उस दशा में अधिक बचत करके शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा, कृषि, वाणिज्य-व्यवसाय और उद्योग-धन्धों की वास्तविक उन्नति करने में हम कितने कृतकार्य्य होंगे! तब हमारे यहाँ न बेकारी इतने भयंकर रूप में होगी—न मरभुखी—कि तीर्थ स्थानों पर जाते हुए ऐसा जान पड़े, मानो हमारा यह सारा का सारा देश अधिकांश रूप से उन लोगों का है, जो कुरूप, अंगहीन, गंदे, जन्म-रोगी और भिखारी हैं! मेरी तो आँखें भर आती हैं, जब मैं किसी ऐसे द्ररिद्र व्यक्ति को देखता हूँ, जो शरीर और स्वास्थ्य की दृष्टि से अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करने में असमर्थ है और फिर भी उसे भीख माँगनी पड़ती है! अपनी जिस जन्मभूमि को हम रत्नगर्भा कहते हों उसके निवासी ऐसे दीन-हीन, दुर्बल, अशिक्षित, अस्वस्थ और असहाय रहें, यह कितने दुःख और परिताप की बात है! आर्थिक स्वराज्य हो जाने पर निस्सन्देह हम इस स्थिति को बहुत दूर फेंक देंगे।

कुछ ठहर कर गुप्ता जी ने कहा—आज विचार-विनिमय ख़ूब हुआ।

बिहारी बोले—बड़ा आनन्द आया।

फिर वीरेश्वर की ओर देखकर उन्होंने पूछा—कहो वीरेश्वर, तुम्हारा एडमिशन हो गया?

वीरेश्वर को बोलने न देकर मोहन ने कहा—कहाँ हो गया चाचाजी। ये तो इस समय बड़ी मुसीबत में है। इनके पिताजी ने कह दिया—मैं कुछ नहीं कर सकता, तुम जो चाहो सो करो।

आश्चर्य से बिहारी ने पूछा—क्यों ? ऐसी क्या बात है ?

वीरेश्वर ने सारी परिस्थिति उनके आगे रख दी और कहा—मैं पिताजी को दोष नहीं देता। उन्होंने जो कुछ किया, उससे अधिक कोई भी क्या करता ?

प्रो० गुप्ता अभी बैठे ही थे। बिहारी ने कहा—क्यों प्रोफ़ेसर साहब, इस विद्यार्थी को क्या आप एक ट्यूशन—दस रुपये का—नहीं दिलवा सकते ?

प्रोफ़ेसर गुप्ता कुछ सोचने लगे।

बिहारी ने तब वीरेश्वर को कुछ नज़दीक बुलाकर उससे पूछा—माँ से कुछ नहीं झटक सकते ?

वीरेश्वर ने कहा—दस रुपये तक चाहे दे दें।

पर इसी समय प्रोफ़ेसर गुप्ता बोल उठे—ट्यूशन मेरे ही यहाँ आपको मिल जायगा ! विजया गणित में कुछ कमज़ोर है। उसी को पढ़ाना पड़ेगा।

"लेकिन एक शर्त है, मिस्टर गुप्ता" बिहारी बाबू ने कहा—आपको दो महीने का वेतन पेशगी देना होगा। बिचारे को यूनिवर्सिटी में एडमिशन के लिए ज़रूरत है।

"अच्छी बात है। दे दूँगा।" गुप्ता जी ने उत्तर दिया।

"तब, बस हो गया वीरेश्वर। देखो, १०) रुपये माँ से, २०) प्रोफ़ेसर साहब से। अब रहा सवाल बीस का। एँ ? सो ये रहे।"

और इतना कहकर उन्होंने उसी समय अपने पर्स से बीस रुपये निकाल कर वीरेश्वर को दिये।

भावना में डूबकर मोहन सोचने लगा—चाचाजी, आदमी नहीं देवता है !

उधर हर्ष से गद्‌गद् होकर वीरेश्वर ने कहा—चाचाजी, आपकी इस कृपा के लिए .... ।

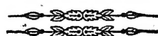
वीरेश्वर भावोद्रेक में आगे कुछ कह न सका। पर बिहारी ने कहा—कृपा इसमें क्या है ? तुमको रुपये की आवश्यकता थी, मैंने उसका प्रबन्ध कर दिया। इस समय तुम यही समझ लो कि तुम हिन्दुस्तान हो और मैं भारत-मंत्री। तब प्रोफ़ेसर गुप्ता, मोहन तथा वीरेश्वर सब-के-सब हँस पड़े। मोहन ने कहा—लो वीरेश्वर, तुम को तो अस्थायी आर्थिक स्वराज्य मिल गया।

वीरेश्वर बोला—हाँ भाई, अवश्य मिल गया। अगर वास्तव में, चाचाजी के समान ही, हमको भारत-मंत्री भी न्याय-प्रिय मिल जाता ..... ।

इसी क्षण बात काटते हुए प्रोफ़ेसर गुप्ता बोल उठे—आर्थिक स्वराज्य तक ही ठीक है वीरेश्वर, आगे मत बढ़ो। भारत-मंत्री अकेला क्या कर सकता है, क्या नहीं, यह राजनीति का विषय है। इसको कभी मेरे पास आकर समझना।

यह कहकर प्रोफ़ेसर गुप्ता चल दिये। वीरेश्वर ने कहा—मैं भी चलूँगा चाचाजी। उसने उन्हें प्रणाम किया।

मोहन वीरेश्वर को दरवाज़े तक भेजने आया। दोनों इस समय अत्यधिक प्रसन्न थे।



भारतवर्षीय हिन्दी-अर्थशास्त्र-परिषद्

(सन् १९२३ ई० में संस्थापित)

सभापति—

श्रीयुत् पंडित दयाशङ्कर दुबे, एम्० ए०, एल-एल० बी० अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग-विश्वविद्यालय, प्रयाग।

मंत्री—

(१) श्रीयुत् जयदेवप्रसाद जी गुप्त, एम्० ए०, बी० कॉम, एस० ए० कालेज, चन्दौसी।

(२) पंडित भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी, दारागंज, प्रयाग।

इस परिषद् का उद्देश्य है जनता में हिन्दी-द्वारा अर्थशास्त्र का ज्ञान फैलाना और उसका साहित्य बढ़ाना। कोई भी सज्जन अर्थशास्त्र पर एक पुस्तक लिखकर इस परिषद् का सदस्य हो सकता है। प्रत्येक सदस्य को परिषद् द्वारा प्रकाशित या सम्पादिक पुस्तकें पौने मूल्य पर दी जाती हैं।

परिषद् की सम्पादन-समिति द्वारा सम्पादित होकर निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं:—

(१) भारतीय अर्थशास्त्र (भारतीय ग्रंथमाला, वृन्दावन)	२॥)
(२) भारतीय राजस्व (भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन)	॥।=)
(३) विदेशी विनिमय (गंगा-ग्रंथाकार, लखनऊ)	१॥)
(४) अर्थशास्त्र शब्दावली (भारतीय ग्रंथमाला वृन्दावन)	१)
(५) कौटिल्य के आर्थिक विचार (,, ,,)	॥।=)
(६) सम्पत्ति का उपभोग (अर्थशास्त्र ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग)	१।)
(७) भारतीय बैंकिंग (रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग)	१॥)

(८) हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति साहित्य (भारतीय ग्रंथमाला, बृन्दावन) ।॥)

(९) धन की उत्पत्ति (लाला रामनारायण लाल, प्रयाग) १।)

(१०) अर्थशास्त्र की रूप-रेखा (साहित्य निकेतन, दारागंज, प्रयाग) ६)

(११) सरल अर्थशास्त्र (लाला रामनारायन लाल प्रयाग) ३)

(१२) ग्राम्य अर्थशास्त्र ,, ,, १।)

(१३) भारत का आर्थिक भूगोल ,, १।)

(१४) ग्रामसुधार (कृषि कार्यालय, जौनपुर) १)

(१५) सरल राजस्व (अर्थशास्त्र ग्रंथावली दारागंज, प्रयाग) १)

हिन्दी में अर्थशास्त्र-सम्बन्धी साहित्य की कितनी कमी है, यह किसी साहित्य-प्रेमी सज्जन से छिपा नहीं है। देश के उत्थान के लिए इस साहित्य की शीघ्र वृद्धि होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक देश-प्रेमी तथा हिन्दी-प्रेमी सज्जन से हमारी प्रार्थना है कि वह अर्थशास्त्र की पुस्तकों के प्रचार करने में हम लोगों को सहायता देने की कृपा करें। जिन महाशयों ने इस विषय पर कोई लेख या पुस्तक लिखी हो तो उसे सभापति के पास भेज दें। पुस्तक परिषद् द्वारा स्वीकृत होने पर सम्पादन-समिति द्वारा बिना मूल्य सम्पादित की जाती है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण परिषद् अभी तक कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं कर पायी है, परन्तु वह प्रत्येक लेख या पुस्तक को सुयोग्य प्रकाशक द्वारा प्रकाशित कराने का पूर्ण प्रयत्न करती है। जो सज्जन अर्थशास्त्र-सम्बन्धी किसी भी विषय पर लेख या पुस्तक लिखने में किसी प्रकार की सहायता चाहते हों, वे नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार करें।

श्री दुबेनिवास,
दारागञ्ज, प्रयाग

दयाशङ्कर दुबे, एम० ए०